thearyasamaj.org

R.N.I. No. 2021/97

रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

अगस्त 2014

अंक 7

ओ३म्

तपोभूमि

मासिक

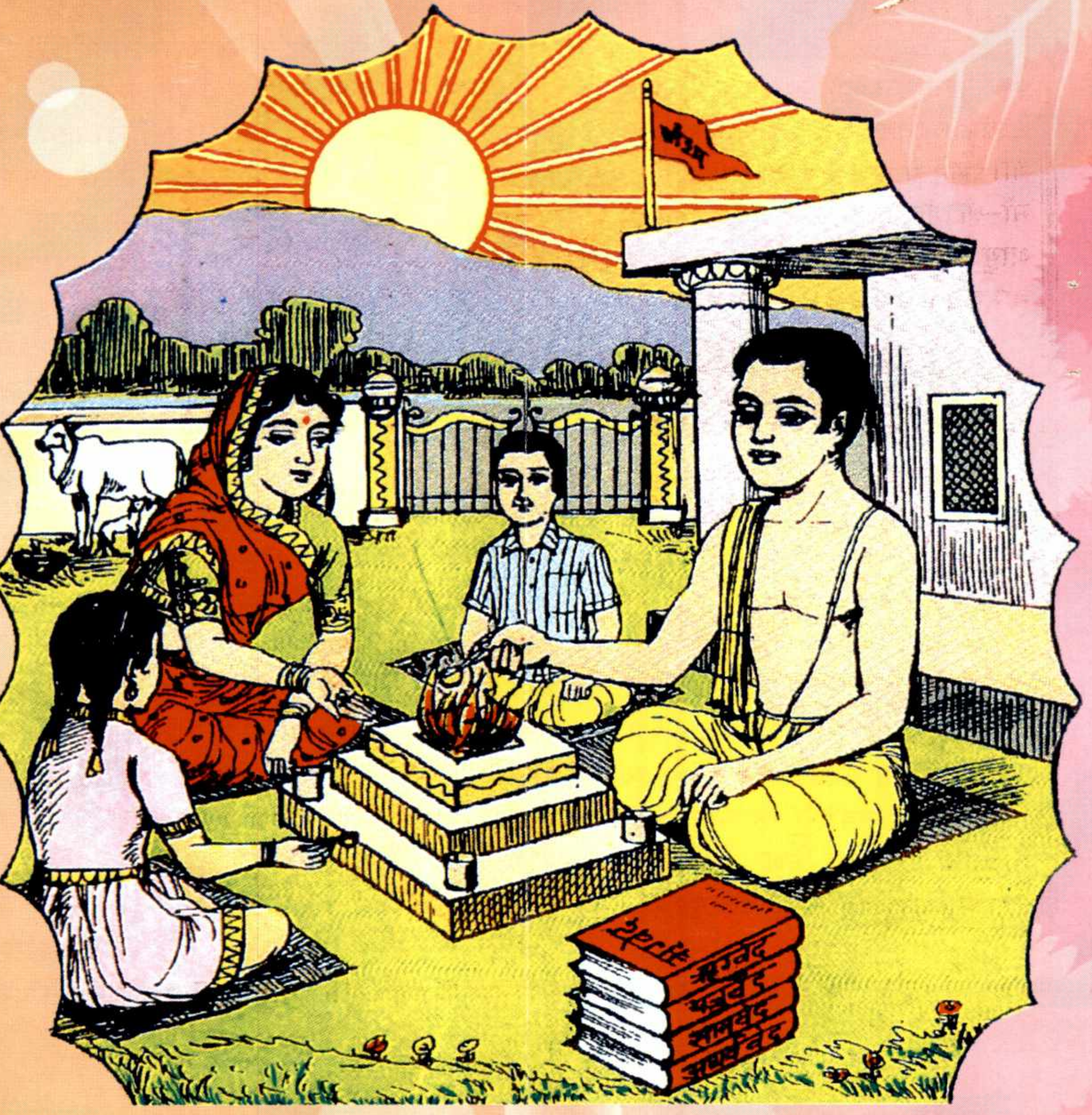

thearyasamaj.org

25 वीं पुण्यतिथि पर विशेष (16 अगस्त 1989)–

जीवन झलकियाँ : एक दृष्टि में

प्रिय 'सुमन' का जन्म मार्गशीर्ष शु0 5 सं0 2003 के एक शुभ्र प्रभात में गली रावलिया (मथुरा) स्थित 'आर्य सदन', में हुआ था। उसके पू0 दादाजी (स्व0 पुरुषोत्तमदास जी आर्य) पू0 दादीजी तथा समस्त परिजनों को स्वभावतः अपार हर्ष का अनुभव हुआ।

आर्यसमाज के किसी भी विशिष्ट सम्मेलन या समायोजन में प्रायः सपरिवार जाने का हमारा नियम ही था, उसी क्रम में चि0 सत्यप्रकाश (ज्येष्ठ पुत्र) के साथ ही प्रिय वेदप्रकाश (तब उसकी आयु लगभग 3 वर्ष थी) गुरुकुल वि0 वि0 काँगड़ी की स्वर्ण जयन्ती पर साथ गया था। देखने में बड़ा ही सुन्दर, सुडौल, शोभनीय लगता था। वहाँ कोई महिला उसे उठाकर ले गई ! उसकी माँ–श्रीदेवी आर्या, कैसी आकुल–व्याकुल हो उठी थी। ईश कृपा से वह मिल गया। लगभग 12 वर्ष की आयु में बहुत अधिक अस्वस्थ हो जाने पर उसकी माँ के साथ ही वृन्दावन में उसकी नानीजी, मामाजी, मामीजी ने बड़ी तपस्या से सेवा की। ईश कृपा से वह स्वस्थ हो गया।

बचपन में पढ़ने में बड़ी अच्छी रुचि थी, बुद्धि तीव्र थी ही एक वर्ष में दो कक्षायें भी उत्तीर्ण कीं। उसकी रुचि के विचार से और इस विचार से भी कि अपना एक पुत्र तो हमें भी समाज सेवा में लगाना ही चाहिए, हमने सन् 1964 में ही मात्र 17 वर्ष की आयु में उसे 'तपोभूमि', 'सत्यप्रकाशन' के यज्ञीय कार्य में साथ ले लिया। इस क्षेत्र में ईश कृपा से उसकी प्रतिभा चमक उठी। शीघ्र ही कार्यालय की व्यवस्था के साथ ही, 'तपोभूमि' के सम्पादन कार्य में सहयोग देना आरम्भ कर दिया। कुछ अंकों का सम्पादन तो बहुत ही अच्छा हुआ। 'नारी सर्वस्व' वृहदंक प्रिय 'सुमन' की सम्पादन कला का सर्वोत्तम निदर्शन है। स्वतंत्र लेखन की प्रतिभा भी ईश कृपा से जग रही थी। उनकी लिखित व सम्पादित पुस्तक–पुस्तिकाओं की संख्या 3 दर्जन से भी अधिक पहुँचती है। 'जागृति' मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया।

1. नारी सर्वस्व भाग–1, 2. नारी सर्वस्व भाग–2, 3. बाल सत्यार्थ प्रकाश, 4. भारत और मूर्तिपूजा, 5. क्या भूत होते हैं, 6. भूत–प्रेत अन्धविश्वास, 7. भारत माँ की बेड़ियाँ, 8. इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ, 9. नवग्रह समीक्षा, 10. ज्योतिष विवेक, 11. गणित ज्योतिष गौरवम्, 12. फलित ज्योतिष समीक्षा, 13. सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, 14. प्रेरक प्रसंग, 15. सफल व्यक्तित्व, 16. सफलता के स्वर्णिम सिद्धान्त, 17. बाल शिक्षा, 18. बोध कथायें भाग–1, 19. बोध कथायें भाग–2, 20. घर का वैद्य, 21. आदर्श देवियाँ, 22. वीर पुत्रियाँ, 23. वीर बालिकायें, 24. विदुषी नारियाँ, 25. आदर्श सती

शेष पृष्ठ सं. 35 पर–

thearyasamaj.org

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–60 संवत्सर 2071 अगस्त 2014 अंक 7

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अगस्त 2014

सृष्टि संवत्
1960853115

दयानन्दाब्द: 190

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेघाव्रत	5–8
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	9–11
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ योग	–डॉ0 सोमदेव शास्त्री	12–15
इस्लाम कैसे फैला	–प्रीतम अमृतसरी	16–17
वेदकालीन पर्वपद्धति	–उदयनाचार्य	18–21
सच्चे सुख की राह	–शिवकरण दुबे 'वेदराही'	22
मृत्यु के बाद क्यों करें ?	–रामेन्द्रकुमार आर्य	23–26
गोरे विदेशी थे तो क्या 'मुगल' स्वदेशी..	–आचार्य आर्यनरेश	27–29
जब ब्राह्मणों के चरणों में संसार झुकता था		30
रहस्य लम्बी जिन्दगी का	–नरेन्द्र	31
चाणक्य		32
धर्म और विज्ञान को मिलकर चलना होगा		33–34

❁ ❁ ❁

वार्षिक शुल्क 150/ पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

thearyasamaj.org

वेदवाणी

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नीइव ज्यया।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम्।। –अथर्व0 1/1/3

अपरा–परा दोनों विद्याएँ मुझमें तान दो

शब्दार्थ:–

हे आचार्य ! (इह एव) यहाँ ही, ब्रह्मचर्याश्रम में ही (उभे) दोनों को अर्थात् अपरा और परा दोनों विद्याओं को (अभि वि तनु) चारों ओर से संग्रह करके विशेषरूप से मेरे आत्मा में तान दो (उभे आर्त्नी इव) जैसे दोनों धनुष्कोटियों को (ज्यया) प्रत्यंचा से तानते हैं। (वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी आचार्य (नि यच्छतु) मुझ ब्रह्मचारी को नियम में चलाये, नियंत्रण में रखे। (मयि एव अस्तु) मुझमें ही रहे, जो (मयि) मुझमें (श्रुतम्) गुरुमुख से सुना हुआ शास्त्रज्ञान है।

भावार्थ:–

मैं ब्रह्मचारी बनकर आचार्य से विद्याध्ययन करने के लिए और व्रतपालन हेतु ब्रह्मचर्याश्रम में प्रविष्ट हुआ हूँ। इसी आश्रम में अधिक–से–अधिक ज्ञानार्जन कर लेना चाहिए, अन्य आश्रम तो गृहीत ज्ञान को परिपक्व करने के लिए और अनुभव में उतारने के लिए हैं। मुण्डक उपनिषद् में विद्याएं दो कही गयी हैं–अपरा और परा। उपनिषत्कार कहते हैं कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये सब वेद–वेदांग अपरा विद्या हैं, और परा विद्या वह है जिससे अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है–अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। सैद्धान्तिक अध्यात्म अपरा विद्या में ही आता है, इसीलिए अध्यात्म के प्रतिपादक वेदों को भी अपरा विद्या में ही डाला गया है। क्रियात्मक अध्यात्म या योग परा विद्या का विषय है। हे आचार्यवर! आप ब्रह्मचर्याश्रम में ही मेरे प्रत्यंचा से दोनों धनुष्कोटियाँ तन जाती हैं। इस प्रकार आपकी छत्रछाया में अध्ययन कर मैं पूर्णविद्य हो जाऊँ। आप 'वाचस्पति' हैं, वाणी पर आपका अधिकार है। आप जिस विषय को भी पढ़ाते हो, निखार कर बिल्कुल स्पष्ट क देते हो। आचार्य के 'वाचस्पति' विशेषण में शास्त्रपाण्डित्य और अध्यापनकला दोनों गुण निहित हैं। हे गुरुवर! आप मुझे ऐसी शैली से पढ़ाओ कि मैं आपके दो प्रकार की होती हैं। प्रथम है रुलाने की पद्धति, जिसमें पाठ को सुनते–सुनते छात्र ऊब जाता है, उसे उसमें कोई रस नहीं आता। दूसरी है रमणपद्धति, जिसमें विद्यार्थी को पढ़ने में रस आता है। रोदनपद्धति से पढ़ने में छात्र दो घण्टे में पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़ पाता है, वह भी उसे समझ में नहीं आता, समझ में आ भी जाये तो भूल जाता है। रमण–पद्धति में छात्र दो घण्टे में पाँच पृष्ठ पढ़ लेता है, उसे पूरी तरह पाठ समझ में आ जाता है और पढ़ा हुआ पाठ कभी भूलता नहीं। हे गुरुवर! आप हमें ऐसी शैली से पढाइये कि जो कुछ हम आपके मुख से सुनें, वह मारे मन, बुद्धि और आत्मा का अंग बन जाये, आपसे पढ़ा हुआ श्रुति–ज्ञान हमें कभी विस्मृत न हो। ❁

thearyasamaj.org

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

दशमः सर्ग

दण्डीशवाणीं निशम्य्य वाग्मी विनिर्ययौ शिक्षणपुण्यगेहात्।
स्थानाशनादिस्थिरताव्यवस्थाचिन्ताकुलान्तःकरण परिव्राट्।। 29।।

दण्डीश्वर की वाणी सुनकर वाग्मी दयानन्द पवित्र गुरुगृह से बाहर निकले और स्थान भोजन आदि की स्थिरता की व्यवस्था की चिन्ता में पड़ गये।। 29।।

असंस्तुतायां मथुरानगर्या न संस्तुतः कोऽपि जनोऽस्य भिक्षोः।
निवेदयेद्यं हि सहायतायै स्थिरत्वदायै निजभोजनादेः।। 30।।

इस अपरिचित मथुरापुरी में इस भिक्षु का कोई भी परिचित मनुष्य न था। इसलिये अपने निवास-भोजनादि के लिये ये किस से सहायता मागते?।। 30।।

अदःप्रबन्धो यदि विप्रबन्धोर्भवेन्न तर्ह्यस्य समश्रमाणाम्।
सुनिष्फलत्वे हि सुजन्मनोऽपि जायेत दुर्जन्म विधेः प्रकोपात्।। 31।।

इस विप्रवर का यदि यह प्रबन्ध न हो जाय तो इसके कुल परिश्रम निष्फल हो जाँय और भाग्य के प्रकोप से मानों सुन्दर मानव-जन्म दुर्जन्म हो जाय।। 31।।

हिमालयोत्तुंगपवित्रशीर्षाद् गंगां व विद्यामृतदिव्यधाराम्।
पश्येत् पिपासुः पुरतो न पातुं शक्येत तादृग्दुरवस्थ आर्यः।। 32।।

जैसे कोई श्रेष्ठ,पिपासु, पुरुष हिमालय के उन्नत पवित्र मस्तक से गिरती हुई गंगाधारा को सामने देखता रहे और पी न सके; वैसे ही इस पवित्र गुरु के मस्तक से निकलती विद्या की दिव्यधारा को ये सामने देखते रहे परन्तु पी न सके, उस समय इनकी ऐसी दुर्दशा हो गई।। 32।।

यथाम्बुपात्रं वदनात् पिपासोसुभोजनं स्वादु यथा बुभुक्षोः।
आच्छिद्यते नुर्द्विषता नु दैवाज् ज्ञानामृतं ज्ञानजुषो न्यवारि।। 33।।

जैसे कोई किसी पिपासु के मुख से जलपात्र छीन ले, और भूखे के सामने से मधुर भोजन दूर हटा ले। वैसे ही द्वेषी दैव ने इन ज्ञान-पिपासु दयानन्द का ज्ञानामृत छीन लिया।। 33।।

नैराश्यनीलाम्बुधरैर्दयालोर्हृदम्बरं निर्मलमावृतं द्राक्।
किंकार्यसम्मूढमभून्मुहूर्त्तादाशार्करश्मी रुरुचेन्तरेऽस्य।। 34।।

इस दयालु का निर्मल हृदयकाश शीघ्र ही निराशा के काले बादलों से घिर गया। अतः कुछ देर के

thearyasamaj.org

लिये किंकर्तव्यमूढ़ हो गये, परन्तु जल्दी ही इनके हृदय में आशा की किरणें छिटक गईं॥ 34॥

महोपकारी मथुरानगर्यामुदारहृद्गुर्जरभूसुरेन्द्रः।
औदीच्यवंश्योऽमरलालनामा ज्योतिर्विदां पुंगव एक आसीत्॥ 35॥

उस समय मथुरा नगरी में एक महान् उपकारी, उदारहृदय, औदीच्यवंशीय, ज्योतिष के विद्वानों में श्रेष्ठ श्री अमरलाल नाम के गुजराती ब्राह्मण रहते थे॥ 35॥

प्रसंगतस्संगतवान्मुनीन्द्रोलक्ष्मीकृपापात्रममुं कृपालुम्।
श्रुत्वाऽस्य वार्ता विपदां स बन्धुश्चक्रे प्रबन्धं गृहभोजनादेः॥ 36॥

प्रसंगवशात् मुनीन्द्र दयानन्द एक बार लक्ष्मी के कृपापात्र इनसे जा मिले। ये भी इनकी विपत्तिभरी बातें सुनकर, इनके निवास और भोजनादि के प्रबन्ध के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो गये॥ 36॥

विलक्षणां तां प्रतिभां धियंच श्रीब्रह्मचर्याभ्युतदेहदीप्त्या।
लसन्मनोज्ञाननपंकजाभां प्रभावितोऽभूदयमस्य वीक्ष्य॥ 37॥

ये स्वामीजी की विलक्षण प्रतिभाशक्ति और ब्रह्मचर्यजन्य देहकान्ति से शोभित मुखारबिन्द का तेज देखकर अतिशय प्रभावित हो गये थे॥ 37॥

लक्ष्मीशसन्मन्दिरपार्श्वगेहं सदेहदघ्नं यमुनासुतीर्थे।
लेभे यतो मंजुलभंगमंभोव्यलोक्यताच्छं पुलिनं लतान्तम्॥ 38॥

यमुना के घाट पर लक्ष्मीनारायण के श्रेष्ठ मन्दिर के पास, एक मनुष्य के सोने के लायक एक छोटी सी कोठरी इन्हें मिली। इस कोठरी में बैठे-2 मनोहर तरंगों से युक्त यमुना का जल और लता से वेष्टित सामने का किनारा दिखाई देता था॥ 38॥

स भोजयित्वा व्रतिनं व्रतज्ञो सदातिथेयो गृहिणां वरेण्यः।
अभुंक्त भक्त्याऽमलया सभार्यः सतां हि सेवामयजीवनं सत्॥ 39॥

अमरलालजी उत्तम गृहस्थ होने से अतिथि-पूजा आदि व्रतों को जानने वाले थे, इसलिये सदा अतिथि सत्कार में तत्पर रहते थे। वे पत्नीसहित बैठकर निर्मल भक्ति से इस ब्रह्मचारी को भोजन कराया करते, क्योंकि सत्पुरुषों का जीवन सेवामय ही होता है॥ 39॥

साहाय्यमस्मै यमिनां वराय प्रदाय मन्येऽमरलालविप्रः।
आम्नायधर्मोद्धरणे स्वजातेः समुन्नतौ चायमभूत्सहायः॥ 40॥

इस यतिवर को सहायता देकर मानों अमरलाल वेदधर्म के उद्धार एवं आर्यजाति की उन्नति में सहायक हो गये॥ 40॥

यन्मानवस्वान्ततमोऽपहं तद् दिव्यं दयानन्ददिवाकरेऽलम्।
तेजोऽभवत् संचितमत्रभागस्तवाप्यतस्तज्जनवन्दनीयः॥ 41॥

दिव्य दयानन्द-दिवाकर में मानव-हृदय के अज्ञान-अन्धकार को नाश करने वाला जो तेज-संचय हो गया था, उसमें अमरलालजी का भी भाग था। अतः वे भी आर्यजनों के लिये वन्दनीय हैं॥ 41॥

thearyasamaj.org

न केवलं ज्ञानजुषो महर्षेर्ज्ञानाशनाया भवता प्रशान्ता।
परंजनौघस्य ततस्तु धन्योभवानभूत्सार्थकनामधेयः।। 42।।

हे अमरलाल, आपने न केवल ज्ञानपिपासु महर्षि की ज्ञानपिपासा शान्त की, किन्तु अनन्त जनता की ज्ञानपिपासा आपने शान्त कर दी। इसलिये आप का अमरलाल नाम सार्थक हो गया।। 42।।

निश्चिन्तचेता गृहभोजनादौ प्रसन्नचन्द्रामलमंजुलास्यः।
ज्ञानोष्णरश्मे र्वदनारविन्दात् पातुं प्रवृत्तो मुनिचन्द्र ओजः।। 43।।

ये मुनिचन्द्र गृहभोजनादि की चिन्ता से निश्चिन्त होकर प्रसन्न–चन्द्रसम निर्मल मनोहर मुखद्वारा गुरुरूपी ज्ञान–सूर्य के मुखारविन्द से विद्यातेज का पान करने लगे।। 43।।

कुल्यावीकेवलकाय आत्मा यूनां समुत्साहभृतां स दण्डी।
उत्साहतेजोबलतो व्रतीन्द्र प्रारब्ध संपाठयितुं विनेयम्।। 44।।

शरीर अस्थिपंजर मात्र होते हुए भी दण्डीजी उत्साही युवकों की तरह खूब उत्साह और शक्ति से अपने शिष्य को पढ़ाने लगे।। 44।।

स सूत्रवित्पाणिनिसूत्रजातं ससिद्धि सोदाहरणं च सार्थम्।
संपाठयामास सुशिष्यमेनं पतंजलेर्भाष्यवरेण साकम्।। 45।।

स्वामी विरजानन्दजी ने दयानन्दजी को अष्टाध्यायी, सूत्रपाठ, वार्त्तिक, उदाहरण, प्रत्युदाहरण, सिद्धि एवं पातंजल भाष्य भी पढ़ा दिया।। 45।।

अध्यापनस्योत्तमरीतिरासीद् विलक्षणाचार्यवरस्य नूनम्।
ययाऽल्पकालेन विनेयवर्गः प्रवीणतां व्याकरणेऽलमाप्तुम्।। 46।।

आचार्यवर दण्डीजी की पाठन प्रणाली विलक्षण एवं उत्तम थी, जिससे कि विद्यार्थीगण कुछ ही समय में व्याकरण में अच्छी योग्यता प्राप्त कर लेते थे।। 46।।

धीरुज्ज्वला धारणशक्तिरुग्रा तीव्रा दयानन्दयतेरतोऽयम्।
व्युत्पन्नतां व्याकरणे व्यतानील्लेभेऽल्पकाले सकलेऽधिकारम्।। 47।।

यतिवर दयानन्द की बुद्धि तीव्र एवं धारणाशक्ति उज्वल थी। इसलिये अल्पकाल में ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण में व्युत्पन्नता प्राप्त कर ली।। 47।।

यथाऽष्टकं व्याकरणेऽद्वितीयं तथैव तत्पाणिनिसूत्रपंक्तेः।
सर्वस्थलस्पष्टसुभावसारज्ञाने महाभाष्यमतुल्यरूपम्।। 48।।

जिस प्रकार व्याकरणशास्त्र में अष्टाध्यायी अद्वितीय ग्रन्थ है, वैसे ही उस पाणिनीय ग्रन्थ की पंक्तियों के प्रत्येक स्थल के स्पष्ट भाव एवं तात्पर्य को द्योतन करने में महाभाष्य भी अनुपम ग्रन्थ है।। 48।।

श्रीकौमुदीव्याकृतिबोधदार्ढ्यं विधातुमायोजनमस्ति यद्वत्।
श्रीभट्टिकाव्यस्य तथाऽष्टकस्य ज्ञाने महाभाष्यमयुज्यताऽरम्।। 49।।

जैसे भट्टोजि दीक्षित कृत सिद्धान्त कौमुदी के ज्ञान को दृढ़ करने के लिये भट्टिकाव्य उपयुक्त है, वैसे ही अष्टाध्यायी को समझाने के लिये महाभाष्य अत्यन्त उपयोगी है।। 49।।

thearyasamaj.org

अम्भोनिधेर्मन्थनदेवकार्ये मेरुर्यथाभून्मथिदण्डकल्पः।
वेदार्णवालोडनदण्डमेवं पातंजलं भाष्यमहो गरीयः।। 50।।

जैसे समुद्रमन्थनरूप देव कार्य के लिये सुमेरुपर्वत मन्थनदण्ड है, वैसे ही वेदरूपी सागर के आलोडन में पांतजल महाभाष्य उत्तम मन्थनदण्ड है।। 50।।

दाक्षीसुतव्याकृतितन्त्रदाक्ष्यं लब्ध्वा महाभाष्यनदीष्णतां सः।
श्रीशब्दसाम्राज्य इहाऽखिलेऽपि सम्राट्पदं नूनमविन्दतार्च्यम्।। 51।।

स्वामीजी ने अष्टाध्यायी एवं महाभाष्य में पूर्ण प्रवीणता प्राप्त करके सम्पूर्ण शब्दसाम्राज्य में सचमुच पूजनीय 'सम्राट्' की पदवी प्राप्त कर ली।। 51।।

सवेदवेदांगरहस्यवेत्ता प्रज्ञाननेत्रो गुरुरार्षशैल्या।
समग्रवेदागमदर्शनानामबूबुधत्सारमिमं यमीन्द्रम्।। 52।।

वेद-वेदांगों के रहस्य को जाननेवाले प्रज्ञाचक्षु आचार्य ने आर्ष शैली से समग्र दर्शन एवं वेदों के सार को समझा दिया।। 52।।

तदार्षविद्याम्बुनिधेरजस्त्रं विगाहनात्तत्त्वमणीन् प्रपन्नान्।
स्वशिष्यरत्नाय गुरुः प्रसन्नोददावमूल्यान् समयादतुल्यान्।। 53।।

प्रसन्न होकर गुरु ने आर्ष विद्या के महासागर में निरन्तर अवगाहन से प्राप्त किये हुए अमूल्य अनुपम तत्वरत्न, अपने शिष्यरत्न को प्रदान कर दिये।। 53।।

अध्येतुमध्येतृवरः पुरेदृङ्नायात्कदाप्यस्य गुरोरुपान्तम्।
अपूर्व आचार्यवरोऽपि पूर्वं निरैक्षि नेदृग् व्रतिमण्डनेन।। 54।।

इन आचार्य के पास पढ़ने के लिये ऐसा कोई शिष्य पहले कभी न आया था। और इस प्रकार के अपूर्व आचार्य भी इस ब्रह्मचारी ने पहले कभी नहीं देखे थे।। 54।।

आदर्शरूपःस विनेयराजेर्जितेन्द्रियेन्द्रो भुवि शिष्यचन्द्रः।
निदर्शनं सद्गुरुमण्डलीनामाचार्य आचारवतां स इन्द्रः।। 55।।

संसार के शिष्यमण्डल में एकमात्र आदर्शरूप यह जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी शिष्य था। और गुरुमण्डल में भी महान् आदर्शरूप स्वामी विरजानन्दजी श्रेष्ठ आचार्य थे।। 55।।

सनत्कुमारादृषिनारदो वा वाजश्रवःसूनुरिवार्यमृत्योः।
श्रीपिप्पलादादिव सत्यकामोबृहस्पतेरिन्द्र इवाधिविद्यम्।। 56।।
यथा वशिष्ठाद् रघुनन्दनः श्रीभीष्मो व्रतीन्द्रो भृगुनन्दनाद्वा।
सान्दीपने र्वा सुगुरो र्मुकुन्दस्तीर्थाद्दयानन्द इतः शिशिक्षे।। 57।।

जैसे सनत्कुमार ऋषि ने नारदजी, यमाचार्य से नचिकेता, पिप्पलाद् मुनि से सत्यकाम, बृहस्पति से इन्द्र, वशिष्ठ से रामचन्द्र, परशुराम से ब्रह्मचारी भीष्म तथा सान्दीपन गुरु से कृष्णचन्द्र ने विद्या प्राप्त की थी, वैसे ही विरजानन्दजी से दयानन्द ने वैदिक विद्याओं का अध्ययन किया।। 56-57।।

-(शेष अगले अंक में)

thearyasamaj.org

योगेश्वर कृष्ण

सम्राट की मान-रक्षा

शल्य का वध

लेखकः पं. चमूपति

कल के युद्ध में शल्य ने सारथि का काम चतुरता से तो किया ही, परन्तु कर्ण से इसका कुछ विशेष स्नेह न था। ध्यानपूर्वक देखने से कुछ ऐसा भी प्रतीत होता है जैसे अन्दर से इनकी कर्ण से लाग-सी हो। पहले तो उसे हतोत्साह करने में इन्होंने कोई बात उठा न रक्खी। फिर सिठनियों और उलहनों तक भी नौबत पहुँची। फिर युद्ध तो जैसे-तैसे हुआ। अन्त को रथ का मिट्टी में धँसा हुआ पहिया कर्ण को स्वयं निकालना पड़ा और इसी में उसका प्राणान्त हुआ। अर्जुन के रथ के सम्बन्ध में भी इस प्रकार के कार्य की आवश्यकता पड़ी थी, वह तो कृष्ण ने कर दिया था। शल्य या तो उस समय घोड़ों के सँभालने के काम में ही इतने व्यस्त थे कि रथ से उतर न सके, या वे सारथि का काम ही कुछ अनमने-से होकर कर रहे थे। महाभारतकार ने इस विषय को पाठक की कल्पना के लिए खुला छोड़ दिया है।

कर्ण के वध के पश्चात् ये रथ लौटाकर कौरव-दल में चले गए। कर्ण के वध का शोक दुर्योधन को बहुत अधिक था। बहुतेरा रोया-पीटा, परन्तु दैव के आगे विवश था। अन्त को सेनापति के पद पर शल्य का अभिषेक किया गया और दूसरे दिन सेना के मुख्य नायक वे ही हुए। कृपाचार्य यह जानते थे कि युद्ध में दुर्योधन का मुख्य अवलम्ब कर्ण ही था। उसकी मृत्यु पर उन्होंने समझा कि सम्भवतः दुर्योधन अब संधि के लिए उद्यत हो जाय। उन्होंने वर्तमान अवस्था की ऊँच-नीच सब दुर्योधन के सामने खोलकर रक्खी। यह भी कहा कि कृष्ण धृतराष्ट्र की बात को न टालेंगे और पाण्डव कृष्ण के कथन की अवहेलना न करेंगे। परन्तु दुर्योधन ने अपने जीवन का अन्तिम मार्ग निश्चित कर लिया था-इस युद्ध के पश्चात् या वह रहेगा या पाण्डव। सन्धि का अब अवसर ही कहाँ था? पहले ही दोनों पक्षों में पर्याप्त लाग थी, और अब तो युद्ध की मार-काट ने सभी योद्धाओं के हृदयों पर गहरे-गहरे नये अमिट घाव लगा दिये थे। अभिमन्यु की मौत से पाण्डव तो दुःखी थे ही, कृष्ण भी सोए-सोए चौंक उठते थे और अभिमन्यु की बाल-मृत्यु का विचार कर, रह-रहकर व्याकुल हो उठते थे। दुर्योधन संधि का प्रस्ताव किसके आगे रखता? क्षत्रिय के लिए स्वर्ग का द्वार रणक्षेत्र की मौत है। दुर्योधन सन्धि से इस मौत को श्रेष्ठ समझता था।

शल्य के सेनापति होने का समाचार युधिष्ठिर को मिला तो उसने कृष्ण से शल्य के साम्मुख्य के

thearyasamaj.org

सम्बन्ध में सम्मति चाही। कल के रण-क्षेत्र के त्याग से युधिष्ठिर अपनी ही सेना की दृष्टि में गिर रहा था। अर्जुन का युधिष्ठिर पर निखट्टू होने का दोषारोप चाहे क्रोध ही के आवेश में किया गया था, तो भी उसकी अन्तरात्मा के एक आकस्मिक उद्गार के रूप में उसकी तथा उसके अन्य भाइयों की मानसिक वृत्ति का सूचक अवश्य था। हो सकता है, प्रत्यक्षतः पाण्डव युधिष्ठिर को निकम्मा, दूसरों की कमाई के सहारे मौजें उड़ानेवाला, या कम-से-कम लड़ाई के मैदान का चोर न भी समझते हों, तो भी अनजाने में, एक असावधानता के क्षण में अर्जुन के मुँह से बेसोचे-समझे निकल गई बात किसी गहरी, अर्जुन की परोक्ष चिति में काम कर रही भावना की सूचक अवश्य थी। मनोवैज्ञानिक मानवचिति के दो स्तर मानते हैं-एक प्रत्यक्ष, दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्ष चिति वह है जो सदा हमारे सम्मुख है। हम उसमें उठ रही भावनाओं, विचारों तथा उत्तेजनाओं को जानते हैं। इसके नीचे हमारे अन्तःकरण के अन्तस्तल में परोक्ष चिति का क्षेत्र है। हम स्वयं उससे परिचित नहीं। हमारी रुचि-अरुचि के आकस्मिक उद्गार, हमारी झट से प्रकाशित होने वाली प्रवृत्तियाँ, हमारे पूर्वतः अज्ञात दृष्टि-बिन्दु-ये सब उसी परोक्ष चिति में बन तथा बस रही सृष्टि है। हमारे वास्तविक आध्यात्मिक तथा नैतिक जीवन का आधार इसी परोक्ष चिति में वास कर ही भावनाएँ हैं। प्रत्यक्ष चिति पर सामाजिक औचित्य-अनौचित्य का दबाव रहता है। हम आडम्बर से भले या बुरे, प्रेम या द्वेष के प्रकाशक हो सकते हैं। कभी-कभी यह आडम्बर ज्ञात होता है। हम अपने हृदय का भाव जान-बूझकर प्रकट नहीं होने देते। परन्तु किसी-किसी दशा में इस आडम्बर का भाव नित्य के अभ्यास या और किसी कारण से इतना गहरा पैठ जाता है कि हमें स्वयं उसका पता नहीं होता। हमारी आन्तरिक चिति में ईर्ष्या काम कर रही होती है। किसी-किसी आवेश या असावधानी के क्षण में वह अपनी झलक दे भी जाती है। परन्तु चूँकि शिष्टाचारवश हमें ईर्ष्यालु होना पसंद नहीं, इसलिए हम इस क्षणिक प्रकाश को दबा देते हैं और समझते हैं कि हम ईर्ष्या से बच गए। मनुष्य की वास्तविक साधुता-असाधुता का पता तो उन्माद या इसी प्रकार की किसी और विवशता-आपे से बाहर होने-की अवस्था में ही लग सकता है। इसी प्रकार की छिपी हुई, परन्तु मनोविज्ञान की दृष्टि में वस्तुतः विद्यमान, एक गर्हात्मक भावना या सम्मति का प्रकाश अर्जुन से एक संयमाभाव के क्षण में हो गया था। युधिष्ठिर ने उसे क्षमा कर दिया। अर्जुन क्रियात्मक रूप में उसके लिए पश्चात्ताप ही नहीं, सम्भवतः प्रायश्चित भी कर चुका था। बात आई-गई हुई। परन्तु कृष्ण के लिए वह गर्हा अभी चिन्ता का विषय थी। ये जिसे सम्राट्-पद के लिए योग्य समझते थे, उसे रणक्षेत्र का भीरु समझा जाय, और वह भी उसके मुख्य योद्धा द्वारा-उस वीर द्वारा जो साम्राज्य की दाहिनी भुजा था, यह कृष्ण को कभी सह्य न था। कुछ हो, युधिष्ठिर का पराक्रम रण-भूमि में अवश्य प्रदर्शित हो जाना चाहिए। इन्होंने शल्य की इस प्रकार प्रशंसा कर कि वह भीष्म, द्रोण तथा कर्ण के जोड़ का तो है ही, संभव है उनसे बढ़ा-चढ़ा योद्धा हो, युधिष्ठिर को एक नपा-तुला, मीन-मेख की सम्भावना से रहित आदेश दे दिया कि उससे लोहा आप ही को लेना होगा। आदेश का बाह्य रूप प्रार्थना के रूप में इस मन्त्रणा का था कि उससे आपके सिवा कोई लोहा ले न सकेगा। परन्तु

thearyasamaj.org

युधिष्ठिर कृष्ण की मन्त्रणा का अर्थ समझते थे। वह मन्त्रणा उनके लिए अटल, अनिवार्य, गुरु की आज्ञा थी।

शल्य पाण्डव-दल के महारथियों से अलग-अलग भी भिड़ता रहा, एक-साथ भी। शल्य और भीम में गदा-युद्ध ठना। दोनों की भारी-भारी चमकीली गदाओं, लम्बी मोटी लोहे-सी सख्त भुजाओं और लाल-लाल नेत्रों से एकसाथ चिनगारियाँ निकल रही थीं। इस योद्ध-युगल में से कौन बचेगा, यह संशय का विषय था। आखिर दोनों का एक-दूसरे पर एकसाथ प्रबल प्रहार होने से दोनों अचेत हो गए। शल्य को कृपाचार्य अपने रथ पर बैठाकर ले गए। भीम पीछे से आह्वान करता रहा।

एक साम्मुख्य में युधिष्ठिर ने शल्य के घोड़ों को मार दिया, रथ को निकम्मा कर दिया, सारथि तथा पार्ष्णि का भी वध कर दिया। यही हाल कृतवर्मा का किया। अश्वत्थामा कृतवर्मा की सहायता को आया। वह उसे अपने रथ में सवार कर दूर ले गया। इसके बाद के साम्मुख्य में पाँसा शल्य के पक्ष में पड़ गया। युधिष्ठिर बिना घोड़ों के, बिगड़े हुए रथ पर खड़े, लड़ने लगे। इस अवस्था में कृष्ण का प्रोत्साहन उनका दिल बढ़ा रहा था। सारे युद्ध का भार अपने कन्धों पर समझ उन्होंने एक भारी शक्ति लेकर शल्य पर उसका वार किया। उसके लगते ही शल्य चित रहा। उसके अंग-अंग से खून बहने लगा। विजय का सेहरा युधिष्ठिर के सिर बँधा।

अर्जुन आज के युद्ध में पीछे-पीछे ही रहा। कृतवर्मा और अश्वत्थामा तथा संशप्तकों के साथ उसके दो-दो हाथ हुए और उन्हें उसने नीचा दिखाया। परन्तु शल्य के सामने वह नहीं हुआ। उसका युधिष्ठिर से अलग-अलग रहना ही इस बात का चिह्न था कि वह अपनी कल की करतूत से लज्जित है और उसका मानसिक प्रतिकार वह युधिष्ठिर को अकेला शल्य का योग्य प्रतिद्वन्द्वी स्वीकार करके कर रहा है। युधिष्ठिर अपने पाँव पर खड़ा हो सकता है और युद्ध की अन्तिम, निर्णायक विजय उसी के हाथों हुई है, इस तथ्य को दर्शकों ने तो अनुभव किया ही। कृष्ण ने अर्जुन से क्रियात्मक रूप से व्यवहार ही ऐसा कराया कि उसे इसमें मीन-मेख हो ही न सके। परोक्ष चिति की उद्दण्ड भावना के उपशमन का उत्तम मनोवैज्ञानिक उपाय यही था कि जैसे वह भावना सहसा उद्‌बुद्ध हुई थी, वैसे ही नैसर्गिक रूप से प्रतिपक्ष-भावना को भी अर्जुन के अन्तःकरण में चुपचाप, अनजाने में, प्रविष्ट होने का अवसर दिया जाय। प्रत्यक्ष प्रयत्न का प्रभाव इससे उलटा होगा। कृष्ण की मनोवैज्ञानिक कर्मपटुता का यह एक और उज्ज्वल उदाहरण है। ❁❁❁

पाठकों से निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के पाठकों से निवेदन है कि वर्ष 2014 का वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रुपये शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** के पते पर तपोभूमि कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका सुचारू रूप से आपको प्राप्त होती रहे।

-व्यवस्थापक

thearyasamaj.org

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ योग

लेखकः डॉ० सोमदेव शास्त्री, मुम्बई

क्षेत्र–क्षेत्रज्ञः–

श्रीकृष्ण ने क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के विषय में समझाते हुए अर्जुन से कहा है कि "हे अर्जुन! यह शरीर क्षेत्र कहलाता है और जो व्यक्ति इस क्षेत्र को जानता है उसे तत्वज्ञानी क्षेत्रज्ञ कहते हैं। हे भरत कुलोत्पन्न अर्जुन! संसार के सब क्षेत्रों (अर्थात् सृष्टि के कण–कण) में तू मुझे अर्थात् परमात्मा को क्षेत्रज्ञ जान। मेरा मत है कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है वही तत्व (वास्तविक) ज्ञान है।"

शरीर और आत्माः–

शरीर और जीवात्मा के बारे में वर्णन आता है कि इनका संयोग एक अन्धे और लंगड़े के समान है। अन्धा व्यक्ति देख नहीं सकता और लंगड़ा चल नहीं सकता है इसलिये अन्धे के कन्धे पर लंगड़ा व्यक्ति बैठ जाता है और लंगड़ा अन्धे को रास्ता बताता जाता है तथा उसके अनुसार अन्धा व्यक्ति चलता चला जाता है। इस प्रकार वे दोनों अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं। जीवात्मा चेतन है किन्तु बिना शरीर के वह कुछ नहीं करता, उसको शरीर के सहयोग की आवश्यकता होती है और शरीर जड़ है वह चेतन (जीवात्मा) के बिना मिट्टी के समान है, निष्क्रिय है, कुछ नहीं कर सकता है। इस प्रकार दोनों के मिलने पर ही अपने गन्तव्य अर्थात् मोक्ष तक जीवात्मा पहुँच सकता है। जीवात्मा के कर्म करने और उनका फल भोगने का साधन शरीर है, इसलिये गीता में इसे क्षेत्र कहा है।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का अर्थः–

क्षेत्र का अर्थ हिन्दी में **खेत** होता है। तथा खेत में किसान बीज बोता है और फसल प्राप्त करता है। इसी प्रकार जीवात्मा **शरीररूपी क्षेत्र** में कर्म के बीज बोता है और **सुख दुःख** रुपी फसल प्राप्त करता है। क्षेत्र को जो जानता है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं। शरीर जड़ है उसे अपना ज्ञान नहीं है किन्तु उसको जाननेवाला **जीवात्मा** चेतन है इसलिये उसे **क्षेत्रज्ञ** कहा है। क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा के अस्तित्व के बारे में दर्शन शास्त्र में लिखा है कि **'संघातपरार्थत्वात्'** अर्थात् जो वस्तु अनेक चीजों से मिलकर बनी है वह दूसरे के लिये होती है। जैसे मकान ईंट, लोहा, पत्थर, लकड़ी आदि वस्तुओं से मिलकर बना है इसलिये मकान किसी दूसरे के लिये अर्थात् मकान **मालिक** के लिये है। इसी प्रकार शरीर में भी आंख, नाक, कान, हाथ, पैर आदि **अनेक अंग** हैं। इन सब अंगों के **समुदाय** को शरीर कहते हैं अपितु जिसमें अनेक वस्तुओं का समुदाय होता है वह अपने लिये नहीं, अपितु दूसरों के लिये होता है। अर्थात् **शरीर शरीर के लिये नहीं**, अपितु शरीर में रहने वाले या शरीर को जाननेवाले क्षेत्रज्ञ–**चेतन जीवात्मा** के लिये है। इस प्रकार

thearyasamaj.org

शरीर और जीवात्मा इन दोनों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् हैं।

जीवात्मा और ब्रह्म क्षेत्रज्ञः-

जिस प्रकार से शरीर के अन्दर **जीवात्मा** है उसी प्रकार पूरे ब्रह्माण्ड अर्थात् सारे संसार के अन्दर **परमात्मा** है। सभी प्राणियों के शरीर में परमेश्वर विद्यमान है। शरीर क्षेत्र है और उसमें रहने वाला जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड या सारा विश्व क्षेत्र है और उसमें रहने वाला या उसको जानने वाला ब्रह्म क्षेत्रज्ञ है। शरीर और जीवात्मा का क्षेत्र सीमित होने से यह व्यष्टि और ब्रह्माण्ड और ब्रह्म का क्षेत्र व्यापक होने से **'समष्टि'** के नाम से जाना जाता है। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का ज्ञान **अर्थात् शरीर 'व्यष्टिरूप में'** ब्रह्माण्ड **'समष्टि रूप में'** ये दोनों जिसके विकार हैं उसे **'प्रकृति'** कहते हैं। शरीर का क्षेत्रज्ञ जीवात्मा और ब्रह्माण्ड का क्षेत्रज्ञ परमात्मा है अर्थात् प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है और शेष सब अज्ञान है। जिससे शरीर और संसार बनते हैं वह प्रकृति तथा शरीर में रहनेवाला, कर्म करनेवाला तथा फल भोगनेवाला जीवात्मा, तथा सारे संसार में विद्यमान परब्रह्म परमात्मा का जिससे ज्ञान होता है, वही सच्चे अर्थों में ज्ञान है।

क्षेत्र किसे कहते हैं:-

क्षेत्र की विस्तृत व्याख्या करते हुए गीता में स्पष्ट लिखा है कि मूल प्रकृति और इसके विकार महत्तत्व (बुद्धि) अहंकार, पांचों इन्द्रियों के विषय, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनको पंचतन्मात्रा भी कहते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियां (आंख, नाक, कान, जीभ और त्वचा) पांच कर्मेन्द्रियां (हाथ, पैर, मुँह तथा मल और मूत्र के विसर्जन के स्थान) तथा मन और पंचस्थूल भूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये **सब क्षेत्र हैं। सांख्य दर्शन** में भी **प्रकृति** और उसके **विकारों** का नाम **क्षेत्र** है यह उल्लेख किया है। प्रकृति और उसके 23 विकार तथा एक जीवात्मा इस प्रकार पच्चीस तत्वों का वर्णन किया है। प्रकृति तथा उसके 23 विकार सांख्यदर्शन में इस प्रकार वर्णित किये हैं। प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, एकादशेन्द्रिय (पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंच कर्मेन्द्रियां, मन) तथा पंच स्थूलभूत (1+7+11++5 = 24) तथा एक पुरुष अर्थात् जीवात्मा इस प्रकार पच्चीस तत्वों का वर्णन सांख्य दर्शन है।

क्षेत्रज्ञ ब्रह्म का स्वरूपः-

परमात्मा पूरे ब्रह्माण्ड में विद्यमान है उस क्षेत्रज्ञ का वर्णन करते हुए गीता में लिखा है कि संसार में जानने योग्य क्या है, जिसके जानने पर मनुष्य अमृत अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है। परमात्मा की सर्वव्यापकता का उल्लेख करता हुआ गीताकार लिखता है कि 'जहां देखो वहां उसके हाथ, पैर, जहां देखो उसकी आँखें हैं। जहां देखो उसके कान हैं, वह सब को लपेट कर इस लोक में ठहरा हुआ है। अर्थात् वह सब जगह विद्यमान है और प्रत्येक प्राणी के द्वारा किये जानेवाले कार्यों को देख रहा है। उनकी बातों को भी सुनता है। वह सब कुछ जानता है, सर्वत्र विद्यमान होने के कारण सारे विश्व का संचालन कर रहा है। परमात्मा के सब ओर आंखें, कानादि हैं, इसका तात्पर्य कोई यह न समझ ले कि परमात्मा के मनुष्यों के

thearyasamaj.org

समान इन्द्रियां (आंख, कान, नाक आदि) हैं, इसलिये उस शंका को दूर करते हुए अगले श्लोक में लिखा है कि उसकी अर्थात् **परमात्मा की अपनी कोई इन्द्रिय नहीं हैं** फिर भी सब इन्द्रियों का आभास उसमें विद्यमान है। वह भूतों के अन्दर भी है। वह चल भी है और अचल भी है। वह दूर भी है और पास भी है। वह सूक्ष्म है इसलिये अविज्ञेय है अर्थात् पूर्ण रूप से जाना नहीं जा सकता है। वह स्वयं अखण्डित है किन्तु सभी भूतों, प्राणियों में खण्डित होकर बैठा है। यह समझना चाहिये कि वह सब प्राणियों का भरण-पोषण करनेवाला है, उन्हें ग्रस जानेवाला है और फिर नये सिरे से उत्पन्न करनेवाला है। वह ज्योतियों की भी ज्योति अर्थात् प्रकाशकों का भी प्रकाशक है। वह अन्धकार से परे है, वही जानने योग्य और सबके हृदय में स्थित है।

शरीर और इन्द्रिय रहित ब्रह्मः-

परमात्मा की इन्द्रियों का निषेध उपनिषदों में भी किया है। वहां लिखा है कि वह बिना आंख के देखता है और बिंना कानों के सुनता है। बिना हाथों के कर्म करता है और बिना पैरों के गति कर रहा है। इस प्रकार शास्त्रों में सर्वव्यापक **परब्रह्म** के मानवीय शरीर और **इन्द्रियों का निषेध है। सर्वशक्तिमान्** है इसलिये बिना शरीर और इन्द्रियों के ही वह संसार को **बनाता** है, **पालन** करता है और उसका संहार करता है उसका संहार-**प्रलय** भी करता है।

परब्रह्म स्वयं अखण्डस्वरूप है किन्तु पदार्थों के पृथक्-पृथक् अस्तित्व के कारण वह पदार्थ की दृष्टि से खण्डित होता हुआ प्रतीत होता है। किन्तु वह **अखण्ड** है एकरस है सबके हृदय में विद्यमान है। सूर्य चन्द्रादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक है। ब्रह्म सर्वव्यापक हाने से वह दूर भी है और पास भी है। इस प्रकार का वर्णन यजुर्वेद में भी आता है। इस तरह जो व्यक्ति **क्षेत्र** अर्थात् शरीर और प्रकृति के विकार इस विश्व को तथा **क्षेत्रज्ञ**-जीव और परमात्मा को वास्तविकरूप से जान लेता है, उसका जीवन शुद्ध पवित्र और **अनेक गुणों** से युक्त हो जाता है।

ज्ञान योगी के लक्षणः-

ज्ञानी या ज्ञानयोगी का जीवन किन गुणों से युक्त हो जाता है इस विषय में गीता में लिखा है कि अभिमान न होना, दंभ-छल-कपट न होना, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्य की सेवा, शरीर तथा मन की सेवा, शरीर तथा मन की शुद्धता, स्थिरता, आत्मसंयम, इन्द्रियों के विषयों में वैराग्य, अहंकार-शून्यता, संसार में जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था, रोग और दुःख इन दोषों को देखना, अनासक्ति, पुत्र-स्त्री-गृह आदि के साथ मोह का न होना, अभीष्ट और अनभीष्ट, प्रिय तथा अप्रिय में सदा समभाव से रहना है ये सब **ज्ञानी के लक्षण** हैं।

गीता के **द्वितीय अध्याय में 'स्थित प्रज्ञ'** के लक्षण बताये हैं। ज्ञानी या **ज्ञानयोगी** के लक्षण **यहां** पर बताये गये हैं। इनका जीवन आदर्श होता है। ये हमेशा जन सामान्य के लिये प्रेरणा स्रोत होते हैं। चाहे **ध्यानयोग** अर्थात् उपासना का मार्ग हो, चाहे **कर्मयोग** अर्थात् निष्काम कर्म करने का मार्ग हो, चाहे

thearyasamaj.org

ज्ञानयोग अर्थात् तत्वज्ञान का मार्ग हो, सभी के द्वारा इन मार्गों पर चलनेवाला व्यक्ति शरीर से अपने को अर्थात् आत्मा को भिन्न समझता हुआ **आत्मिक उन्नति में लगा रहता** है। यही बात गीता में कही है कि कुछ लोग **ध्यान योग** के द्वारा कुछ लोग **कर्मयोग** के द्वारा, कुछ लोग **ज्ञानयोग** द्वारा अपने आप से अपने शरीर से अपनी आत्मा को अलग देख लेते हैं।

क्षेत्रज्ञ–जीव और (ब्रह्म) में भिन्नता:–

शरीर रूपी क्षेत्र में रहने वाला जीवात्मा भी क्षेत्रज्ञ और ब्रह्माण्ड रूपी क्षेत्र में रहने वाला परमात्मा भी क्षेत्रज्ञ है किन्तु दोनों में क्या भिन्नता है? इस विषय में गीता में लिखा है कि पुरुष (जीवात्मा) प्रकृति में स्थित होकर प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले गुणों का भोग करता है। इन गुणों के साथ संग हो जाना ही इस पुरुष के अच्छी या बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है। इस शरीर में (जैसे जीवात्मा है वैसे) ही एक परम पुरुष भी है, जिसे परमात्मा कहते हैं, जो उसे द्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता और भोक्ता तथा महेश्वर भी कहते हैं। हे अर्जुन! वह अव्यय, अविनाशी परमात्मा अनादि है, निर्गुण है, इसलिये शरीर में रहता हुआ भी वह न कुछ कर्म करता है, न किसी कर्म में लिप्त होता है, जिस प्रकार सूर्य सारे संसार को प्रकाशित कर रहा है उसी प्रकार हे अर्जुन! सारे क्षेत्र का स्वामी परमात्मा समूचे क्षेत्र अर्थात् ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रहा है।

ज्ञान चक्षु से भिन्नता का ज्ञान:–

जो लोग अपने **ज्ञान चक्षुओं** से क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के भेद को जान लेते हैं वे परमपद को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार विस्तृत रूप से यह स्पष्ट किया है कि जीवात्मा कर्म करता है। प्रकृति के इन (सत्व, रज और तम) गुणों से प्रभावित होकर शुभाशुभ कर्म करके उसमें आसक्त हो जाता है और उसी के परिणामस्वरूप अच्छे और बुरे, उच्च और निम्न शरीरों को प्राप्त करता है। अर्थात् कर्मानुसार ईश्वरीय व्यवस्था से फल प्राप्त करता है। किन्तु शरीर में जीवात्मा रहता है, परमात्मा भी शरीर में रहता है किन्तु वह द्रष्टा या साक्षी बनकर रहता है। इसलिये मनुष्य द्वारा किये जाने वाले कर्मों में लिप्त नहीं रहता है। सूर्य के समान सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित कर रहा है। इतना ही नहीं अपितु वह सूर्य का भी प्रकाशक है। परमेश्वर अविनाशी, विनाश रहित, अनादि अर्थात् उसका कभी प्रारम्भ या जन्मादि नहीं होता है। प्रकृति के सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से वह रहित है इसलिये यह निर्गुण है। इस भिन्नता को ज्ञान नेत्र से अर्थात् ज्ञान की आंखों से ही देखा जा सकता है। मानवीय चर्म चक्षुओं से ईश्वर, जीव, प्रकृति का भेद नहीं जाना जा सकता है और जो व्यक्ति अपनी ज्ञानचक्षु से भेद जान लेता है वह परमगति अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

–(शेष अगले अंक में)

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

इस्लाम कैसे फैला

लेखकः– प्रीतम अमृतसरी

मुहम्मद शाह के काल में अब्दुल गनी तथा मुल्ला शर्फ ने हिन्दुओं पर बड़े–2 अत्याचार किये। कैलाशपुर हिन्दुओं का एक मुहल्ला था। उसे जला दिया गया। अत्याचारियों की सूची में असदखान का नाम अव्वल नम्बर पर है। उसे गर्व था कि "मैं दूसरा नादरशाह हूँ" वह पण्डितों को घास के बोरे में बन्द करके उन्हें जल में डुबो देता था........ जजिया कर पुनः हिन्दुओं पर लग गया था। इन बातों से तँग आकर **बहुत से ब्राह्मण या तो भाग गये या मुसलमान हो गये, अन्यथा कत्ल कर दिये गये।** (सफीरी कश्मीर बाबत जनवरी 1897 पृष्ठ 17–18–19)

तदनन्तर मीर हाज का समय आया; वह घास के बोरों के स्थान में चमड़े की थैलियों में पण्डितों को डुबोता था; पठानों के अत्याचारों से कश्मीरी दुःखित हो गये; और केवल महाराजा रणजीतसिंह की शरण में शान्ति की आशा रक्खी।......... इन्हीं दिनों बीरबल दुर अपने पुत्र राज काक समेत कश्मीर से गुप्त रूप से निकल आया और महाराजा रणजीतसिंह से सहायता की याचना की; मुहम्मद अजीम ने उधर यह हाल सुना तो दोनों की स्त्रियों को बुला भेजा। इस पर बीरबल दुर की धर्मपत्नी ने तो आत्मघात कर लिया; परन्तु राजकाक की नवयुवती किसी प्रकार उनके हाथ आ गई जिसे उन्होंने मुसलमान बनाकर काबुल भेज दिया।

फर्रुखाबाद

मुहम्मद खाँ पहला नबाव था जोकि हिन्दु लड़कों को मुसलमान बनाने का बड़ा शाइक था। उसने लगभग 4000 लड़के अपने जीवन में मुसलमान बनाये। यह प्रायः उन राजाओं के पुत्र थे जो युद्ध में हारते रहे। (डिस्ट्रिक्टगैजेटीयर ऑफ यू.पी. जिल्द 9, पृष्ठ सं. 76)

शाहपुर

मुसलमान बनाना (हिन्दुओं को) पठान और मुगल जमाने में अफसरान का ऐन फरज रहा है। (डिस्ट्रिक्टगैजेटीयर ऑफ यू.पी. जिल्द 9, पृष्ठ सं. 28)

खानपुर

अकबरपुर में या तो औरंगजेब के बनाये हुए मुसलमान चौहान हैं, या चण्डेल जो फर्रुखाबाद के मुहम्मद खाँ के **हुकम से मुसलमान किये गये।** (डिस्ट्रिक्टगैजेटीयर ऑफ यू.पी. जिल्द 9, पृष्ठ सं. 121)

thearyasamaj.org

हरदोई

यहां के मशहूर चण्डेलों की बाबत कहावत है कि उनको शेरशाह ने तलवार के जोर से मुसलमान बनाया था। (डिस्ट्रिक्टगैजेटीयर ऑफ यू पी. जिल्द 9, पृष्ठ सं. 69)

बान्दा

ये लोग दीखते राजपूतों में से हैं।.........ये अपने आपको गौरी मुसलमान कहते हैं क्योंकि उनको मुहम्मद गौरी ने मुसलमान बनाया था। कुछ एक का यह भी कथन है कि उनको शेरशाह और सलीम शाह ने मुसलमान बनाया। (डिस्ट्रिक्टगैजेटीयर ऑफ यू पी. जिल्द 9, पृष्ठ सं. 102)

बनारस

शेखों की संख्या 26408 है हालांकि वे अपने आपको मुसलमान बादशाहों की सन्तान कहते हैं; परन्तु वस्तुतः वह हिन्दुओं में से हैं, जिनको मुसलमान बनाया गया। वह मुफती, काजी व कानूंगो आदियों में सम्मिलित हो गये जिन्होंने उन्हें मुसलमान बनाया और **जिनका एक फर्ज यह भी था** कि वह हिन्दुओं को मुसलमान मजहब कबूल करायें। (डिस्ट्रिक्टगैजेटीयर ऑफ यू पी. जिल्द 9, पृष्ठ सं. 104)

इलाहाबाद

मुस्लिम राजपूत विशेषतः फूलपुर और हण्डिया में पाये जाते हैं और चौहान और भगेल वंशों में से हैं। भगेलों को अकबर ने जलीलपुर तःअल्लुक दिया था इसलिये कि रेवा वंश के एक भगेल सरदार ने मध्यप्रदेश में भारी सेवा की थी **तथा मुसलमान हो गया था।** (डिस्ट्रिक्टगैजेटीयर ऑफ यू पी. जिल्द 9, पृष्ठ सं. 97)

–(शेष अगले अंक में)

महापुरुषों की जयन्ती		महापुरुषों की पुण्यतिथि	
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन	1 अगस्त	लोकमान्य तिलक	1 अगस्त
अरविन्द घोष	15 अगस्त	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी	6 अगस्त
गोस्वामी तुलसीदास	16 अगस्त	रविन्द्रनाथ टैगोर	8 अगस्त
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी	17 अगस्त	खुदीराम बोस	11 अगस्त
राजगुरु	24 अगस्त	मैडम भिकाजी कामा	13 अगस्त
		वीर गुलाबसिंह	14 अगस्त
भारत छोड़ो आन्दोलन 1942	9 अगस्त	मदनलाल ढींगरा	17 अगस्त
रक्षा बन्धन	10 अगस्त	नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	18 अगस्त
स्वतन्त्रता दिवस	15 अगस्त		

thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

वेदकालीन पर्व पद्धति

लेखकः – उदयनाचार्य, निगमनीडम्–वेदगुरुकुलम्, पिडिचेड, गज्वेल, मेदक (आं. प्र.)

इस प्रकार के निषेधों का तात्पर्य पर्वदिनों में यज्ञों का ही अनुष्ठान होना चाहिए, अन्य भौतिक सुखादि की इच्छा नहीं करनी चाहिए, इतना ही नहीं धर्मशास्त्रों में इन पर्वदिनों को वेदादि शास्त्रों को पढ़ने या पढ़ाने वालों के लिए अनध्ययन घोषित किया गया। इसका भी अभिप्राय वही है कि वेदादि को पढ़ने–पढ़ाने वाले भी इन पर्वदिनों में यज्ञादियों को त्यागकर प्रतिदिन के समान अपने कार्यों में ही संलग्न न रहें, अपितु पार्वण यज्ञों को अवश्य करें। इस प्रकार की अनिवार्यता में गुरु–शिष्यों को पठन–पाठन बन्द कर अनुष्ठान की तैयारियों एवं अनुष्ठान में ही संलग्न रहना पड़ता था। अनध्ययन का तात्पर्य अवकाश, छुट्टी अर्थात् सभी कार्यों से मुक्त होकर आराम करना नहीं है। यह तो अनार्यों, आलसियों का लक्षण है। प्राचीन काल में अनध्ययन सोद्देश्य था। पर आजकल तो रविवार को अवकाश दिन घोषित कर आराम का दिन बना दिया गया। रविवार का अवकाश दिन तो ईसाइयों के लिए सोद्देश्य है और वे ही लोग इसे अवकाश के रूप में मनाते आये हैं। क्योंकि वे उस दिन अपने व्यक्तिगत सभी कार्यों को बन्द कर ईसामसीह की आराधना करने हेतु चर्च में जाते हैं। उस दिन कोई भी ईसाई चर्च में न जाकर अपने व्यापारादि निजी कार्यों में न लगा रहे, इसके लिए उन्होंने रविवार को अवकाश दिन घोषित किया। उनकी मान्यता है कि ईसा ने छः दिन काम कर सातवें दिन में (रविवार को) विश्राम किया था। उसी दिन ईसा आशीष देता है (द्र0 तौरेतयात्रा–Exodus पर्व0 20। आ0 8.11. अपि च द्र0 सत्यार्थ प्रकाश–13)। तो उनके लिए रविवार का अवकाश सोद्देश्य है। पर हम वैदिक (भारतीय) अपने पर्वदिनों (अनध्ययन दिनों के कर्तव्यों) को तो भूले ही नहीं, अपितु ईसाईयों का अन्धानुकरण करते जा रहे हैं, यह तो धिक्कार के योग्य है। यहां प्रमुख ध्यातव्य विषय तो यह है कि सात दिनों (सप्ताह) का विभाग अशास्त्रीय एवं निर्हेतुक हैं। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में कहीं भी इनका उल्लेख नहीं है। सर्वत्र संवत्सर के विभाग के रूप में अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि (दिन) आदि का ही वर्णन मिलता है। अस्तु, ?

प्रकृतमनुसरामः– अब हम प्रकृत प्रसंग की चर्चा करते हैं।

शास्त्रीय दृष्टिकोण से हमने जान लिया था कि पर्वदिनों में विशिष्ट यज्ञों का आयोजन किया जाता था, तथा कुछ विशिष्ट नियमों, व्रतों का पालन किया जाता था और उसके लिये भौतिक कार्यों को त्यागा जाता था। पर्वदिनों में व्रताचरण अनिवार्य होने के कारण कालान्तर में साहचर्यनियम से पर्व एवं व्रत समानार्थक बन गये। दुर्भाग्यवशात् जब वैदिकपरम्परा नष्ट होकर पौराणिकता प्रबल हुई, तब अनेकानेक अवैदिक, अशास्त्रीय व्रत एवं पर्वों का प्रचलन हुआ। आजकल जो पर्व (उत्सव) मनाये जाते हैं,

thearyasamaj.org

उनमें अधिकांश पर्व इसी युग की देन हैं। वैदिक या आर्षयुग में इनकी कोई ऐतिहासिकता नहीं दीखती। पुराण एवं निर्णयसिन्धु, हेमाद्रि, कृत्यरत्नाकर आदि-आदि अनेक अवैदिक ग्रन्थों में जिन व्रतों वा पर्वों (उत्सवों) का वर्णन है, उनकी सूची ही इतनी लम्बी है कि वह एक ग्रन्थरूप धारण कर लिया है (द्र0 धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ0 पी. वी. काणे, भाग-4, पृ0 96-237)।

यथार्थ में व्रतों व पर्वों का मूल उद्‌देश्य यह है कि व्यक्ति अपनी आत्मिक उन्नति करते हुए मोक्ष की प्राप्ति करें। उसकी साधना वा पद्धति अष्टांग योग के रूप में योगदर्शन में विस्तृत रूप से प्रतिपादित है। उसमें यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), एवं नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वप्रणिधान) का जाति, देश, काल, समय के भेदों से रहित होकर पालन करने को महाव्रत कहा गया है-**"जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्"** (योग0 2.31)। **मनुष्य में अज्ञान, आलस्य, प्रमादादि के कारण स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि उत्पन्न होते हैं। अतः उनसे दूर कर मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित करना ही पर्वों (उत्सवों) का प्रधान उद्‌देश्य है।** यहाँ प्रसंगतः यह बतलाना भी अनावश्यक प्रतीत नहीं होता कि उपवास का वैदिक या यथार्थ स्वरूप क्या है?

उप समीपे यो वासो जीवात्मपरमात्मनोः।
उपवासः स विज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम्॥ (बराहोपनिषद्-2.39)।

जीवात्मा का परमात्मा के समीप वास करना वा उसके लिए प्रयत्न करना ही उपवास (महाव्रत) कहा जाता है, न कि भोजन बन्द कर शरीर को सुखाना। वह तो उपवास शब्द का अर्थ ही नहीं है। आजकल तो उपवास शब्द उपहास्य बनकर रह गया। उपवास के नाम से दुगुना खाया जाता है, अस्तु।

पर्वों के विशेष सन्दर्भों पर अवैदिक अर्थात् पौराणिक व्रतों के आचरण से वैदिक परम्परा नष्ट हो जाती है। यह एक अक्षम्य अपराध है, पाप है। अतएव हमें वेद आदेश देता है कि-**"स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिंसीरदितिं विराजम्"** (यजु0 13.43) अर्थात् वह जिज्ञासु, मुमुक्षु, पूर्णिमा, अमावस्या आदि पर्वों में अनुष्ठीयमान यज्ञों के द्वारा और प्रत्येक ऋतुओं में किये जाने वाले यज्ञ वा ऋतुचर्या (ऋत्वनुकूल व्यवहार) के द्वारा शक्तिशाली होता हुआ वेदवाणी की अविच्छिन्न परम्परा का विघात न करें अथवा यज्ञों में गाय आदि पशुओं की बलि न दें। तात्पर्य है कि हमें वेदविरूद्ध नहीं चलना चाहिए। पुनः पर्वों पर हमें क्या करना चाहिए? पर्वों को हमें कैसे मनाना चाहिए? इसमें भी हमें वेद मार्गदर्शन करता है-**"भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा-पर्वणा वयम्"** (ऋ0 1.94.4) हे ईश्वर! हम आपकी प्राप्ति के लिए अपने अन्तरात्मा में ज्ञानरूपी इध्म (समीधा) को धारण करेंगें, प्रदीप्त करेंगे। इसके लिए हम (पर्वणा-पर्वणा) प्रत्येक पर्व पर आपका ही स्मरण करते हुए, आपकी ही उपासना (उपवास रूपी व्रत) करते हुए हवियाँ प्रदान करें अर्थात् यज्ञ-याग करें। यह है पर्वों को मनाने की प्राचीनतम वैदिक पद्धति। वेद अन्यत्र कहता है कि-**"समानृधे पर्वभिर्वावृधानः"** (ऋ0 10.79.7) उपासक जीव अपने में सद्‌गुणों को पूर्ण कर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करते हुए अपने जीवन को पूर्ण करता है, चरितार्थ करता

thearyasamaj.org

है। यही मानव का धर्म भी है। जैसे कि कहा गया है–**"त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति"** (छा0 उप0 2. 23. 1) अर्थात् धर्म के तीन आधार हैं– 1. यज्ञ, 2. वेदों का स्वाध्याय और 3. दान। ये तीनों ही पर्वों (उत्सवों) पर किये जाते थे। **"यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"** (वैशेषिकदर्शन 1. 1. 2)–जिससे इहलौकिक सुख और निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो, वही धर्म है। इस प्रकार प्राचीन वैदिक पर्व पूर्णतया धर्ममय थे।

अब हम निरुक्त के तीसरे निर्वचन की ओर प्रस्थान करते हैं। **"तत्प्रकृतीरत् (अपि पर्व), सन्धिसामान्यात्"** अर्थात् जिस प्रकार मासादि सन्धियों को पर्व कहा गया है, वैसे ही अन्य वस्तुओं की सन्धियों को भी 'पर्व' कहा जाता है। जैसे हड्डियों की सन्धियाँ (जोड़), बांस की गांठ, पहाड़ों के जोड़ आदि। इस अर्थ को महर्षि दयानन्द ने भी प्रकट किया–**"पिपर्तीति पर्व, ग्रन्थिर्वा"** (उणादि0 4. 114)। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इस अर्थ के वैदिक प्रयोगों को भी हम यहाँ दिखाते हैं–**"निर्मज्जानं न पर्वणो जभार"** (ऋ0 10. 68. 9) अज्ञान की ग्रन्थी (गांठ) रूप बन्धन में लिप्त जीव को (ईश्वर) मुक्त करें। **"प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि"** (ऋ0 10. 87. 5, अथर्व0 8. 3. 4) ज्ञानीपुरुष अपने अज्ञानमय ग्रन्थियों को नष्ट करें। इस अज्ञानरूप पर्वत को तोड़ने का प्रकार व विधि दूसरे निर्वचन की व्याख्या में दिखा चुके हैं और अग्रिम पंक्तियों में भी वेदमंत्रों के माध्यम से हम उस विधि को पुनः दिखायेंगे। महर्षि यास्क ने पर्व शब्द के अपने निर्वचन से हमें बोध कराया कि यथार्थतः पर्व किसे कहते हैं? पर्व को कैसे मनाना चाहिए, पर्व को मनाने का स्वरूप क्या है? उसका उद्देश्य क्या है? इत्यादि।

संवत्सर शब्द में ही याज्ञिक एवं आध्यात्मिक अर्थ समाहित हैं। संवत्सर शब्द "सवं+त्सर" शब्दों से बनता है। त्स छद्मगतौ (भ्वा0 373) धातु का अर्थ है कि–गुप्तरुप से चुपचाप जाना, पहुँचाना, प्राप्त करना। जो अज्ञात रूप से सर्वत्र एवं सब में व्याप्त हो जाता है, वही संवत्सर कहलाता है। सम्पूर्वक वस–निवासे (भ्वा0 731) धातु से औणादिक 'सरन्' (चित्) प्रत्यय होकर भी संवत्सर शब्द बनता है। जिसमें सभी ऋतु संगठित होकर क्रमविशेष में बसते हैं वही संवत्सर कहलाता है। संवत्सर बसंत ऋतु से आरम्भ होता है। वेद कहते हैं कि बसंत ऋतु आज्य (घी) के समान है–**"वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्म शरद्धविः"** (ऋ0 10. 90. 6, यजु0 31. 14, अथर्व0 19. 6. 10)। आज्य एक मधुर एवं स्निग्ध (स्नेह युक्त) पदार्थ है। बसंत ऋतु में भी सर्वत्र हरित रूपी स्नेह दृग्गोचर होता है। ग्रीष्म ऋतु के समान कहीं भी शुष्कता दिखाई नहीं देती। वैसे ही मनुष्यों में भी माधुर्य, प्रेम, स्नेह रूपी आज्य व्याप्त हो जाय तो वह मानवीय बसंत ऋतु है, मानवीय संवत्सर का आरम्भ है। ऐसे दिव्य गुण से मनुष्य सभी के हृदयों में गुप्तरूप से प्रवेश कर जाता है और उनमें बस जाता है। ऐसे स्निग्ध आज्य से ही देवताओं ने अर्थात् दिव्यगुणयुक्त स्नेही महापुरुष सभी कामनाओं को जीता है और अमरत्व को प्राप्त किया है। इध्म (समिधा) अग्निप्रधान है। इसीलिए वह ग्रीष्म ऋतु का प्रतीक है। शरद् ऋतु में अन्न पक जाता है। उस पके हुए नये अन्न से यज्ञों में हवियां (आहुतियां) दी जाती हैं, अतएवं शरद् ऋतु हवि का प्रतिनिधि है। परोपकार की भावना, सभी

thearyasamaj.org

प्राणियों के प्रति मित्रदृष्टि रखना अर्थात् स्नेह रूपी आज्य से सभी को प्रसन्न करना, आनन्दित करना ही वैयक्तिक संवत्सर का बसंत ऋतु है। अपने में और समाज में व्याप्त सभी दुरितों को, आसुरी भावों को इध्म (समिधा) के समान भस्म करना ही ग्रीष्म ऋतु है। यह एक महान् तप है। ऐसे तप से परितप्त होकर व्यक्ति का परिपक्क होना ही, जीवन की सार्थकता ही शरद् ऋतु है। यही यथार्थ सांवत्सर यज्ञ है, पार्वण यज्ञ है।

संवत्सर भर अर्थात् प्रत्येक पर्व (ऋतुसंधियों) पर यज्ञ-यागों का अनुष्ठान करते हुए, उन द्रव्य यज्ञों के साथ-साथ याज्ञिक पुरुष अपने आन्तरिक (आध्यात्मिक) यज्ञ का भी अनुष्ठान करें। उस आध्यात्मिक यज्ञ का अनुष्ठान कैसे करें? यह वेद के ही शब्दों में देखें-

वसन्तेनऽऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः।। (यजु0 21. 33)

जो वसन्त ऋतु के समान अपने जीवन में ज्ञान-विज्ञान के पुष्पों को विकसित कर सदा नव-नूतनत्व को, सद्गुणों को धारण कर दिव्यता को प्राप्त कर लेते हैं और अपने ही अन्तरात्मा के चिन्तन में बसते हैं अर्थात् अपने जीवन में वसन्त ऋतु को लाते हैं, ऐसे वसु ब्रह्मचारी व प्रथम कक्ष के विद्वान् लोग तीनों कालों में प्रशंसित होते हैं। अपने पराक्रम एवं तेज से जीवात्मा में ज्ञानरूपी हवि तथा उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हैं।

ग्रीष्मेणऽऋतुना देवा रुद्राः पंचदशे स्तुताः।
बृहता यशसा बलं हविरिन्द्रे वयो दधुः।। (यजु0 21. 24)

जो ग्रीष्म ऋतु के सूर्यसदृश अपने प्रचण्ड ज्ञान के प्रताप से आन्तरिक मलों को भस्म कर देते हैं और ज्ञान, शान्ति एवं आनन्दरूपी रस को ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् अपने जीवन में ग्रीष्म ऋतु को लाते हैं, ऐसे दिव्यता के प्राप्त किये हुए रुद्रगण अर्थात् अपने आसुरीभावों को सन्तप्त करने वाले रुद्र ब्रह्मचारी व मध्यम कक्ष के विद्वान् लोग पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ एवं पांच प्राणों को स्वाधीन करने में प्रशस्त होते हैं तथा महान् यश, बल, जीवन रूपी हवियों (ग्रहण करने योग्यों) को अपने में धारण करते हैं।

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः।। (यजु0 21. 25)

जो वर्षा ऋतु के समान संचित ज्ञान को सभी मनुष्यों में बरसाते हैं और उनके अज्ञान को, कष्टों को दूर कर आनन्दित करते हैं अर्थात् जो अपने में वर्षा ऋतु को लाते हैं, ऐसे आदित्य देव अर्थात् आदित्य ब्रह्मचारी व उत्तम विद्वज्जन स्तुति करने योग्य सूक्ष्मशरीर (5 ज्ञानेन्द्रिय+5 कर्मेन्द्रिय+5 प्राण+मन+बुद्धि) में प्रशस्त होते हैं तथा विभिन्न रूपवाले व स्वभाव वाले प्रजा से एवं ओज से अपने में श्रेष्ठ जीवन को धारण करते हैं।

-(शेष अगले अंक में)

thearyasamaj.org

गतांक से आगे

सच्चे सुख की राह

लेखकः- शिवकरण दुबे 'वेदराही', सिंगरौली, पो० शक्तिनगर, जिला-सोनभद्र (उ० प्र०)

इसी प्रकार जो सुख भोगकाल में तथा परिणाम में भी आत्मा को मोहित करने वाला है-वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न सुख तामस सुख कहा गया है जो नानाविधि दुःखों का कारण है। इस प्रकार गीता अध्याय 14 श्लोक 9 में सात्विक गुण के प्रभाव को बतलाते हुए कहा गया है कि **''सत्त्वं सुखे संजयंति रजः कर्मणि भारत। ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत''**। अर्थात् सत्व गुण सुख संयोजन करता है। रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण तो ज्ञान को दबाकर प्रमाद में लगाता है। अतः श्रीमद्भागवत गीता (अध्याय 16, श्लोक 23) में जीवन को सुखमय बनाने के लिए शास्त्रानुमोदित कर्मों का विधान करते हुए लिखा गया है कि **''यः शास्त्रविधिमृत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।** अर्थात् जो व्यक्ति शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को **और न सुख को ही प्राप्त होता।** वस्तुतः मानवमात्र के लिए धर्म-कर्म का विधान वेदादि शास्त्रों में किया गया है जिससे वह अभ्युदय और निःश्रेयस अर्थात् लौकिक एवं आध्यात्मिक सुख प्राप्त कर सके। वेदादि शास्त्रों में मानव के लिए विहित, उचित, शुभ एवं सत्य कर्मों का विधान है तथा निषिद्ध, अशुभ, अनुचित, बुरे कर्मों का निषेध है क्योंकि **शुभेन कर्मणा सौख्यं दुखं पापेन कर्मणा** अर्थात् शुभ कर्मों से सुख तथा अशुभ या पाप कर्मों से दुख होता है। इसके साथ ही सुखी जीवन जीने की कला तथा दुखों से निवृति के उपायों का विधान किया गया है। अतः शास्त्रानुमोदित कर्म को करने का निर्देश करते हुए गीता अध्याय 16, श्लोक 24 में कहा गया है कि **''तस्मात्प्र शास्त्र प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमहार्हसि''** अर्थात् कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर व्यक्ति को शास्त्रविधि से नियम कर्म करना चाहिए। जैसे रोग की निवृत्ति के लिए चिकित्सा शास्त्र में विहित पथ्य, औषधि को जानकर सेवन करना आवश्यक है वैसे ही मानवमात्र के लिए सच्चे सुख का मार्ग वेदादि शास्त्रों में विहित है। गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरित मानस में वेद को दुखसागर से पार उतारने वाली नौका से तुलना करते हुए लिखते हैं-''वंदौ चारिहु वेद भववारिधि वोहित सरसि। रामराज्य का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं। **वर्णाश्रम निज-निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहि सुखहि नहि भय, शोक न रोग।** अर्थात् राम के राज्य में सब प्रजा वेदानुकूल आचरण करती थी और भय, शोक, रोग से मुक्त होकर सुखी जीवन जीते थे। वस्तुतः वेद में सर्व विद्याओं का भंडार है। वेद सार्वभौम एवं सनातन ज्ञान का

-शेष पृष्ठ सं. 31 पर

thearyasamaj.org

मृत्यु के बाद क्या करें ?

लेखकः रामेन्द्रकुमार आर्य, मदनियां (महोली), जिला-सीतापुर (उ० प्र०)

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्योषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च।। (चाणक्य नीति 5/15)

भावार्थः – घर के ब्राहर विद्या मित्र है और घर में पत्नी मित्र है, रोगी के लिए औषधियाँ मित्र हैं और मरने वाले के लिए धर्म मित्र होता है।

भार्या घर में मित्र है, हरे औषधि शोक।
विद्या मित्र प्रवास में, धर्म मित्र पर लोक।। –(आचार्य स्वदेश)

महाभारत में युधिष्ठिर और यक्ष संवाद में कई प्रेरणाप्रद व ज्ञानवर्धक प्रश्न व उत्तर हुए उसमें एक यह भी प्रश्न था कि प्रतिदिन का आश्चर्य क्या है? तो युधिष्ठिर द्वारा इसका उत्तर दिया गया कि प्रतिदिन का आश्चर्य है मृत्यु, अर्थात् निरन्तर मृत्यु हो रही है लेकिन फिर भी हम दीर्घजीवन की कामना करते हैं अर्थात् जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु भी निश्चित है मृत्यु का टिकट प्रत्येक व्यक्ति के पास है जन्म मृत्यु निश्चित होते हुए भी समय अनिश्चित है।

जब हमारे घरों में किसी की मृत्यु हो जाय तब हमें धैर्यपूर्वक विचार करना चाहिए कि आज आत्मा और शरीर का वियोग हो गया तत्पश्चात् सम्बन्धियों व मित्रों को सूचना दी जाती है व मृतक स्थान पर धूपबत्ती सुलगा देनी चाहिए। यदि किसी कारणवश रात्रि रुकना पड़ जाय तो वहाँ पर घी का दीपक जलाकर रख देना चाहिए। इससे मच्छर व मक्खी का प्रतिकार रहता है उसके बाद अन्त्येष्टि कर्म करने हेतु तैयारी की जाती है अब प्रश्न यह उठता है कि अन्त्येष्टि कर्म करना कहाँ पर उचित है यहाँपर तथाकथित विभिन्न वर्ग विरादरियों में अन्त्येष्टि कर्म पृथक-पृथक स्थानों पर करने का रिवाज है। जैसे कोई विभिन्न नदियों के तटों पर तो कोई अपने खेतों में, लेकिन यहाँ पर हमें धर्म ग्रन्थानुसार ऋषियों के बताये मार्ग का अनुशरण करें क्योंकि समस्त मानव जाति की एक ही बिरादरी व एक ही सबका धर्म है इसलिए सबके संस्कार कर्मकाण्ड की एक ही विधि होनी चाहिए। पाखण्डों को चुनौती देने वाले वेदों के विद्वान् ऋषि दयानन्द कृत संस्कार विधि के अनुसार बस्ती के दक्षिण दिशा में अंत्येष्टि कर्म करें यहां पर हम इस वैज्ञानिक तथ्य को भी जानें दक्षिण दिशा इसलिए उपयुक्त है कि प्रायः पछुवा व पुरवाई हवाऐं ज्यादातर बहती हैं दक्षिणी हवा कम। मृत शरीर जलने के बाद वायु का दुर्गन्धित हो जाना स्वाभाविक है यदि अन्त्येष्टि क्रिया बस्ती के पूर्व या पश्चिम दिशा में की जायेगी तो दूषित वायु का बस्ती में आना स्वाभाविक है इसलिए सरकार भी चकबंदी में श्मशान हेतु बस्ती के दक्षिण दिशा में सार्वजनिक भूमि खाली छोड़ती है। इसलिए हमारे देश के विचारक वयोवृद्ध अनुभवी किसान भाई बस्ती के दक्षिण दिशा में बाग का लगाना ठीक नहीं मानते।

अन्त्येष्टि कर्म करने हेतु तैयारी में शव के मुँह में स्वर्ण डालना भ्रान्तियों का जनक है ऐसा कदापि

thearyasamaj.org

न करें मृत शरीर को स्नान कराकर फिर शरीर पर सुगन्धित द्रव्य चन्दनादि घी इत्र छिड़ककर वेष्ठन (शव वस्त्र) में लपेटते हैं तत्पश्चात् मृत शरीर को अर्थी पर रख देना चाहिए यदि मृतक पुरुष है तो उस शव के ऊपर हल्के पीले रंग का कपड़ा यदि मृतक महिला सुहागिन है तो उसके ऊपर लाल कपड़ा यदि मृतक विधवा है तो शरीर पर सफेद कपड़ा डालें तब उसके ऊपर फूल-फूलमाला लपेट दें ये कार्य इसलिए किये जाते हैं ताकि शव को ले जाने वाले शव से घृणा न करें। शवयात्रा में आत्मा नित्य है यह शरीर नश्वर है ओ3म् नाम सत्य है वह परम नित्य है, जिसे ओ3म् से प्रीति है उसकी ही मुक्ति है क्रतो! ओ3म् स्मर-क्लिबे स्मर क्रतो ! ओ3म् स्मर कृतं स्मर आदि वाक्यों को उच्चारित करें। कुछ लोग रास्ते में आटे की लोई शव पर रखकर पिण्ड लगाते यह क्रिया अवैदिक व भ्रान्ति जनक है ऐसा न करें। न शव यात्रा के साथ मार्ग में बताशा व मखाना डालते ऐसा करना भी गलत है क्योंकि ऐसी दु:ख की घड़ी में इन बताशों को कोई उठाकर नहीं खाता। इन बताशों को चीटियाँ खाने आ जाती हैं जो कि वाहनों के पहियों से कुचलकर मर जाती जिससे जीव हत्या होती व अन्न का दुरुपयोग होता अब अन्त्येष्टि करने वाले स्थान पर साफ-सुथरा स्थान बनाकर तीन लकड़ियां लगभग 1.5 हाथ की दूरी पर पूर्व पश्चिम दिशा की तरफ समानान्तर रखें फिर इन तीनों लकड़ियों के ऊपर उत्तर व दक्षिण की तरफ समानान्तर लम्बी-लम्बी लकड़ियां रखें तब चिता पर मृत शरीर को उत्तर दक्षिण दिशा में रखें फिर कम से कम 3 चन्दन की लकड़ी शरीर पर रखें व कुछ तुलसी व ढाक की लकड़ी रखें फिर कपूर के 2 टुकड़े आंखों में, 2 टुकड़े कानों में, तथा 2 टुकड़े नाक में लगायें तथा शेष कपूर के टुकड़े जहां तहां शरीर पर लकड़ियों में लगादें फिर शरीर पर पर्याप्त मात्रा में घी छिड़कदें फिर जो लोग घर के व अन्य सम्बन्धी जो शव यात्रा के साथ गये हों वे कटी धूप या हवन सामग्री में जो बनाया मिश्रण जिसमें जौं, चावल, शक्कर, गिर्री, छुहारा, मखाना, इलायची, सरसों, दूध व घी युक्त हवन सामग्री लेकर तीन-2 मुट्ठी सब लोग मृतक के शरीर पर सहयोग की भावना से डालें तथा मुँह में घी, शक्कर भर दें फिर शरीर के ऊपर लकड़ियां चिन दें तत्पश्चात् चारों तरफ फूस लगायें फिर जल पात्र से चारों तरफ जल की धार डालें। अन्त्येष्टि कर्म मृतक का सम्बन्धी स्त्री-पुरुष कोई भी कर सकता है। मृतक चाहे विवाहित हो चाहे अविवाहित उसे गाड़ना व जल प्रवाह करना पाप कर्म है। शव का वैदिक रीति से अन्त्येष्टि करना ही श्रेष्ठ है। यदि अन्त्येष्टि कर्त्ता सम्पन्न हो तो यह कार्य वैदिक विद्वान के पौरोहित्य में करवाया जाय यदि विपन्नता हो तो इस कार्य में सम्बन्धी सहयोग करें व स्वयं करें। जब आग प्रचण्ड हो जाय तो चिता से दूर हटकर सब लोग शोक सभा करें। वैदिक रीति से अन्त्येष्टि करने वाले पुण्य सेवी होते हैं। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को चाहिए कि मृत्यु के पहले ही कुछ धन अपनी अन्त्येष्टि के लिए छोड़ जाय। कहीं-2 समाज में यह धारणा है कि जलते हुए शव के सिर में एक लम्बा बांस लगाकर सिर को फोड़ते और कहते हैं कि इससे यादगार नष्ट हो जायेगी यादगार रहने का कोई प्रश्न ही नहीं। अत: कपाल क्रिया करना भी अवैदिक है ऐसा कदापि न करें यह क्रिया वाममार्गियों की देन है जो व्यक्ति दुर्व्यसनादि से मस्त होकर या निरुद्यमी रहकर अपनी अन्त्येष्टि के लिए यथोचित धन अपने पीछे नहीं छोड़ता वह पाप का भागी होता है। अन्त्येष्टि कर्म के बाद सब लोग इकट्ठे होकर मृतक के व्यक्तित्व व कृतित्व गुणों को बखानकर कर्मों की अमरता व शरीर की नश्वरता पर चर्चा करके शोक सभा करें फिर

thearyasamaj.org

मृतक के सम्बन्धी साफ जल से स्नान करें फिर एक जगह जुड़कर मृतक के घर की समस्या जैसे कोई कार्य पिछड़ गया हो उसे सब सम्बन्धी मिलकर तन, मन व धन से पूरा करावें। यही वास्तविक जुरिया है जो जुरिया (कुश की गाँठ) पर पानी उलचते यह कार्य भी वेद विरुद्ध है ऐसा न करें तत्पश्चात् मृतक का शरीर जहां पर रखा गया था वहां पर साफ-सफाई करके प्रतिदिन सायं घी का दीपक जलाकर रखें फिर दूसरे या तीसरे दिन वैदिक विद्वान के पौरोहित्य में या घर के लोग घर की प्राण वायु की शुद्धि हेतु भौतिक व आत्मिक शान्ति के सम्पादनार्थ शान्तिकरण व स्वस्तिवाचन के मंत्रों से हवन कराकर गृह शुद्धि करावें व कठोपनिषद की कथा जो शान्ति व प्रेरणा देने वाली है कराना भी उत्तम है व यज्ञ के घृत शेष को हवन के पास उपस्थिति समस्त सदस्य व आगन्तुक अपने-2 हाथों व चेहरे पर लगा लें तथा तीसरे दिन अन्त्येष्टि कर्म करने वाले स्थान पर जाकर (अस्थि चयन) चिता की हड्डी बीनकर लगभग 2 हाथ गहरे गड्डे में गाड़ दें। ताकि मृतक की हड्डियां किसी के पैरों में कभी न चुभें व राख को खेत में डाल दें। राख को नदियों आदि में विसर्जित करने से जल प्रदूषण होता है ग्रह में शान्ति हवन के बाद मृतक के अच्छे कर्मों, गुणों की चर्चा करें व लोकोपकारक राष्ट्रोन्नति गुरुकुल, वृक्षारोपण, गोशाला, वैदिक पुस्तक प्रकाशन, वेद प्रचार, जलाशय निर्माण दीन, नि:शक्त, विधवा व अनाथों के कल्याणार्थ धन, अन्न, वस्त्र व द्रव्य देना ठीक है जो कि यज्ञ के व्यापक रुप हैं। मृतक के बाद 10 दिन तक शोक कर बैठना फिर बाल मुड़वाना दसवाँ, तेरही मिथ्या भ्रान्ति व पाखण्ड पैदा करने वाली गरुण पुराण की कथा करवाना वर्ग विशेष को धन, अन्न, मिठाई, फल, बर्तन, वस्त्र, चारपाई, छाता, टार्च व अन्य द्रव्य पैर दबाना ये क्रियायें मध्यकालीन हैं जो कि वेद विरुद्ध हैं। लोक भय से इन कार्यों को नहीं करना चाहिए न ही किसी को इन कार्यों हेतु प्रेरित करना चाहिए क्योंकि ये अवैदिक कर्म मिथ्या भ्रान्तियों के जनक हैं। दान देते समय देश काल परिस्थिति पात्र, कुपात्र का अवश्य ध्यान दें क्योंकि कुपात्र को दान देने से दाता और ग्रहीता दोनों दु:ख उठाते तथा सुपात्र को दान देने से राष्ट्र का कल्याण होता है।

हमारे पूर्वज राम व कृष्ण का जीवन वेदानुकूल था उन्होंने दसवां तेरही नहीं किया मध्यकाल से पुराणकारों ने दसवां तेरही का विधान नवीन इतिहास लिखकर चालू किया समाज लोक भय के कारण महाभारत के बाद मध्यकाल से इन कार्यों को करने लगा। जरा विचार करो कि जीवन सुख दु:ख से भय है जीवन में सुख ज्यादा है, दु:ख कम है। आना जाना जीवन का भ्रम है। आशा निराशा, पाप व पुण्य जीवन के अंग हैं जन्म व मृत्यु ईश्वरीय व्यवस्था है जिसका जन्म हुआ उसकी मृत्यु भी निश्चित है तथा जिसकी मृत्यु हुई उसका जन्म भी निश्चित है। जैसे दिन के बाद रात व रात के बाद दिन होना निश्चित है। मृत्यु से डरो नहीं मृत्यु को जानो मृत्यु के समय अज्ञानी व मूर्ख रोते हैं। आत्मा व शरीर के मिलन को जन्म तथा आत्मा व शरीर के वियोग का नाम मृत्यु है। इसके अतिरिक्त जड़ उपासना, अविद्या, झूंठ, अधर्म, स्वार्थ, आलस्य, असंयोग, सजावट, फिजूलखर्ची, विरोध, शत्रुता, कायरता, कुसंग, लोभ, हीनता, हिंसा, इदं मम, बनावट, दिखावट, मिलावट व कृतघ्नता को भी मृत्यु कहते हैं तथा ईशभक्ति, विद्या, सत्य, धर्म, परोपकार निज देश पर अभिमान, पुरुषार्थ, गौरव, ब्रह्मचर्य, सादगी, एकता, मित्रता, वीरता मितव्ययिता, सत्संग, सन्तोष, अहिंसा व कृतज्ञता को भी जीवन कहते हैं। भीष्म पितामह, महर्षि

thearyasamaj.org

दयानन्द, श्रद्धानन्द, पं0 रामप्रसाद बिस्मिल, भगतसिंह, ऊधमसिंह, नाथूराम गोडसे व वीर हकीकत राय ने मृत्यु को भी जीता।

जन मानस में कुछ लोगों की धारणा है कि यदि किसी के कैंसर, टी.वी., क्षय रोग व श्वांस व कुष्ठ रोग था तो उसे मरने के बाद जलाना नहीं चाहिए ऐसी स्थिति में मृतक को जलाना ही चाहिए लेकिन सामग्री की मात्रा यथाशक्ति कुछ बढ़ा लेना चाहिए क्योंकि अग्नि ही हर प्रकार के जीवाणुओं को नष्ट कर सकती है। वातावरण में पुनः रोग फैलने की आशंका नहीं रहती। शव को भूमि में गाड़ने से जंगली जानवर खोदकर खाते जिससे जानवरों व मानवों में रोग फैलने की आशंका रहती है। मृतक के स्थान पर समाधि (चबूतरा) बनवाना भी गलत है। समाधि योग का नाम है जो कि जीवित में होता है समाधि बनवाने से भूमि का दुरुपयोग होता व कब्र पूजा, पीर पूजा, दरगाह पूजा आदि पाखण्ड बढ़ते मृतक की अस्थियां बाद में परिवारीजन गया, प्रयाग, हरिद्वार आदि में डालते जिससे नदियों का जल दूषित होता। परमात्मा ने नदियों का जल पीने नहाने व सिंचाई हेतु प्रदान किया है। अतः हमें चाहिए कि हम रूढ़ियों, भ्रान्तियों के पोषक न बनें अन्यथा हमारा जीवन संकट ग्रस्त हो जायेगा। फलतः हमें चाहिए कि हम अपने अतीत वेद सिद्धान्त का अनुकरण करें। तभी हमारा व समाज का फिर राष्ट्र का कल्याण होकर विश्व का कल्याण होगा यहां पर हिन्दी साहित्य के कुबेर डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के शिष्य राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त जी की निम्न पंक्तियां घटित हो जाती हैं।

प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियाँ हों जो बुरी।
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी।।
किस भांति जीना चाहिए किस भांति मरना चाहिए।
सो सब हमें निज पूर्वजों से याद करना चाहिए।।
करते उपेक्षा यदि न हम उस उच्चतम उद्देश्य की।
तो आज यह अवनति नहीं होती हमारे देश की।।
संसार अब जाने कि यदि हम आज हैं पिछड़े पड़े।
तो कल बराबर और परसों विश्व के आगे खड़े।।
उस वेद के उपदेश का सर्वत्र ही प्रस्ताव हो।
सौहार्द्र और मतैक्य हो अविरुद्ध मन का भाव हो।।

इतिहास से सीख हमारा अतीत इतिहास चिराग के सदृश है कवि के शब्दों में-

इतिहास न अपना पढ़ती, वह जाति शिखर नहिं चढ़ती।
गहरे गड्ढ़े में गिरती, गैरों के साथ में सड़ती।।
इतिहास जाति का जीवन है, इतिहास देश की माता है।
इतिहास है अन्धे की लकड़ी, इतिहास हमारा नाता है।।
इतिहास जहां परिमार्जित है, वह देश न मिटने पाता है।
इतिहास जहां का बदल गया, वह देश रसातल जाता है।।

❀❀❀

thearyasamaj.org

।। वयं राष्ट्रे जागृयामः हम राष्ट्ररक्षा हित सदा जागते रहें।।

यदि विदेशी अत्याचारियों गोरों के 'नामपट' भारत से हटने चाहिए तो क्या मुगलहमलावरों व उनकी सन्तानों के नाम-पट रहने चाहिएं?

गोरे विदेशी थे, तो क्या 'मुगल' स्वदेशी हैं?

-आचार्य आर्यनरेश वैदिक गवेषक, सिरमौर (हि0 प्र0)

गोरों की सहायता से पांच-सात को छोड़ 100 प्रतिशत मुसलमानों ने देश बांटकर 'पाक' की मांग की। दोनों की भाषा में मजहबी किताब, लिपी, नबी व इबादत स्थल विदेशी! दोनों गो हत्यारे, गोमांस भक्षक, लुटेरे, आर्यखालसा हिन्दुओं के कातिल, अन्यायकारी, पक्षपाती, अत्याचारी! माँ बहन बेटी के व्यभिचारी श्रीराम कृष्ण वेद के मानने वालों को विधर्मी बनाने वाले राष्ट्रद्रोही हैं। भारत माता, गोमाता, वेदमाता तथा आर्य सभ्यता। दोनों को न पसंद है। दोनों ने अनगिनत मन्दिरों को तोड़ा है एवं भारत का धन, लूट-लूटकर विदेश भेजा है। दोनों ने ही हमारे वैदिक विज्ञान के लाखों ग्रन्थों को जलाया है एवं अब भी भोले-भाले लोगों को विधर्मी बना कर, आर्यखालसा हिन्दू संस्कृति मिटाने में लगे हैं। ध्यान रहे कि श्रीराम मन्दिर को तोड़करर विदेशी विधर्मी बाबर द्वारा बनाए गए ढांचे को तोड़कर उसे मुक्त करवाने का जब महाराष्ट्र भक्तिपूर्ण कार्य किया गया। तो अभी की विदेशी मुगलों की कश्मीर आदि में रहने वाली सन्तानों ने स्वदेशी श्रीराम के प्रति, अपनी भक्ति न दिखाकर विदेशी क्रूर, अत्याचारी कातिल हमलावर बाबर का साथ देते हुए कश्मीर में लगभग 108 मन्दिर तोड़ गिराए। क्या विदेशी हमलावरों का साथ देने वाले कभी स्वदेशी हो सकते हैं? अतः जब हमने अंग्रेजों के जाने के पश्चात् भारत व उसकी राजधानी दिल्ली से अनेक गोरों के नाम सड़कों व भवनों से हटा दिए तो पुनः किसलिए विदेशी हमलावर मुगल सन्तानों के नामों को यहां महिमा मण्डित कर रहे हैं?

क्यों न देशद्रोहियों का भारत के भाल पर लगा काला धब्बा शीघ्र मिटा दें। दिल्ली में:-

❁ हमलावर विदेशी मुगलों व उनकी दुष्ट सन्तानों पर मार्ग ❁

1. **कुतुबरोड कुतुबुद्दीन:-** इसने 1193 से 1202 तक अनेक मन्दिरों को तोड़ा, मुसलमान न बनने पर लाखों हिन्दुओं का कत्ल कर मीनारें बनाईं, "करोड़ों का धन लूटा। बहुत से हिन्दुओं को गुलाम बनाकर उनके गले में गुलामी के पट्टे डाले। ध्यान में रहे कि कुतुब लाट इसने नहीं महाराजा आर्यपाल ने बनाई थी। प्राचीन 'कुतुब' ज्योतिष शब्द है।

2. **अलाउद्दीन खिलजी रोड:-** 1292 से 1321 तक अनेक मन्दिर व मूर्तियां तोड़कर सड़कों व (मस्जिदों में बिछाई) अनगिनत हिन्दुओं का कत्ल व धन लूटा। चित्तौड़ की महारानी को लूटने हेतु

thearyasamaj.org

कत्लेआम से धरती लाल कर दी। अपने राजकाल में नियम बनाया कि मुस्लिम अधिकारी जो भी माँगे 'धन, सोना, चाँदी, बीबी,' उसे हिन्दू दे दे। कोई अधिकारी पान चबा रहा हो तो उसकी **पीप** हेतु हिन्दू अपना मुंह खोल ले। हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब खण्ड 3, पृ. 166।

3. **अमीर खुसरोः–** खिलजी द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचारों को देखकर नाचता था व मुसलमानों द्वारा भारत में उन्हें विधर्मी बनाने का सबसे अच्छा स्थान बताता।

4. **बाबर रोडः–** 1500 के आसपास लगभग ढाई लाख अमिखालसा हिन्दुओं को कत्ल किया राममन्दिर को तोड़कर उस पर हिन्दुओं के खून से गारा बनाकर मस्जिद बनाई। अनेक मां, बहन, बेटियों को बलातकार व निकाह और अथाह धन लूटा व मन्दिर तोड़े। श्रीगुरू नानकदेव जी को इसी ने जेल में डाला था।

5. **शेरशाहसूरी रोडः–** कुरआन के आदेश से अनेक हिन्दुओं का कत्ल किया उनकी मां, बहन, बेटियों से बलातकार, निकाह व अथाह धन लूटा। अनेक लोगों को मुसलमान बनाया (मुगलों द्वारा लूट व कत्लेआम के प्रमाण हेतु देखे। इलियट डाऊसन इतिहास)

6. **हुमायूं रोडः–** जिसे विदेशी मुस्लिम परस्त कांग्रेस पूज रही है एवं उसके मकबरे पर करोड़ों खर्च कर रही है उसने 1530 में जहां उ0 प्र0 में महाराजा युधिष्ठिर की यज्ञशाला को तोड़कर उस पर 'नीली छतरी' नाम की मस्जिद बनाई वहां उसके साथ-साथ अनेक हिन्दुओं के मुस्लिम न बनने पर कत्ल किया। अनेक माँ, बहन, बेटियों से व्यभिचार बलात् निकाह किया व करोड़ों का धन लूटा।

7. **जलालुद्दीन 'अकबर' रोडः–** 1538 में इस विदेशी कांग्रेस के पूज्य महानीच ने केवल चित्तौड़ पर लड़ाई देखने आए 30000 निहत्थे हिन्दू बच्चों, महिलाओं, बूढ़ों का बेरहमी से कत्ल किया। अनेक मन्दिरों को तोड़ा लूटा, अनेक महिलाओं को कामवासना का शिकार बनाया। आज भी आगरा के बादलगढ़ (लालकिला) में उसकी औरतों का हरम सुरक्षित है। उस पर लगे भारत पुरातत्व विभाग के बोर्ड पर अंकित है कि ''यहां अकबर अपनी 5000 औरतों को विषय भोग हेतु गुलाम बनाकर रखता था। 'अकबर' का अर्थ महान् होता है क्या वह था?

8. **जहांगीर रोडः–** 1600 के लगभग इस दुष्ट ने श्रीगुरू अर्जुनदेव जी को मुसलमान न बनने पर गर्म-गर्म आग पर रखे लोहे के तवों पर जला-जला कर मार दिया था। मुसलमान न बनने पर असंख्य आर्य खालसा हिन्दुओं का कत्ल किया। मन्दिरों को तोड़ा, करोड़ों रुपया लूटा और राम, कृष्ण, शिव आदि देवों की मूर्तियों को तोड़कर उस पर गौओं को कत्ल कर मांस व खून चढ़ाया। रोड के साथ-साथ इसके नाम की जहांगीरपुरी भी है।

9. **शाहजहाँ रोडः–** 1645 के आस-पास इसे मुगल सन्तान ने भी अपने कुरआन 'दीन' का पालन करते हुए अनेक मन्दिर तोड़े उन पर मस्जिदें बनाईं, मुसलमान न बनने पर अनेक भारतीयों का कत्ल किया।

10. **औरंगजेब रोडः–** 1660 के आस-पास मथुरा में बने प्रसिद्ध कृष्णजन्म मन्दिर को तोड़ा। उसकी मूर्त्ति पर गोमांस चढ़ाकर उसे आगरा की जहांनारा मस्जिद की सीढ़ियों में मुसलमानों हेतु ठोकरें मारने

thearyasamaj.org

को डाला। मुसलमान न बनने पर श्री गुरु तेगबहादुर, भाई मतिदास, भाई सतीदास, भाई दयाला की गर्दनें काटकर, आरे से चीरकर रुई लपेट जलाकर और गागर में आलू की तरह उबाल-उबाल कर मारा मुसलमान न बनने पर अनेक हिन्दुओं का कत्ल किया। कत्ल से बचने हेतु जीने का टैक्स जिजिया लिया। कश्मीर सहित पूर्ण देश के लाखों आर्यखालसा हिन्दुओं के जनेऊ तोड़े एवं मन्दिरों को तोड़कर कुरआन के अनुसार मस्जिदें बनाईं।

11. **टीपू सुल्तान रोडः-** 1680 के आस-पास इस मुसलमान शासक ने आर्यखालसा हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम दीन स्वीकार ने करने पर कुरआन के आदेश से 20 वर्ष से ऊपर आयु के लोगों का बड़ी बेरहमी से कत्ल किया। माता-पिता व उनके बच्चों को एक साथ गले में फांसी का फंदा डालकर मुंह में गोमांस ढूंसकर मौत की सजा दी। अनेक को नंगा करके हाथी के पैरों तले कुचलकर मरवा दिया। (मुगलों द्वारा भारत में 'कातिलाना' जिहाद-ले. जयदीप सेन हिन्दू राईटर्स फोरन 129-बी, एम. आई. जी. फ्लैट्स, राजोरी गार्डन, नईदिल्ली-110027)

12. **सिकन्दर लोधी रोडः-** इसके कुरानिक मुस्लिम राज में जब एक सज्जन पण्डित ने (कुरआन को बिना पढ़े) यह कह दिया कि हिन्दू एवं मुस्लिम धर्म दोनों ही अच्छे हैं तो मौलवियों ने उस पर इस्लाम मजहब की तौहीन करने का आरोप लगा दिया और मृत्युदण्ड सुना दिया। उसे कहा गया कि या तो वह मुसलमान बन जाए अथवा कत्ल होना स्वीकार करे। उस सच्चे ईश्वरभक्त श्री बोधक नाम के ब्राह्मण ने विधर्मी होने एवं गोमांस खाने के स्थान पर मरना स्वीकार किया। महामूर्ख मुस्लिम परस्त विदेशी कांग्रेस नेता विचार करें। इसके नाम की लोधी कालोनी भी दिल्ली में हैं।

13. **ख्वाजा निजामुद्दीन रोड व स्टेशनः-** इस व्यक्ति ने बहला-फुसला कर अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का प्रयास किया तत्कालीन मुस्लिम नेताओं की सहायता की बंगाल में हिन्दुओं को कत्लेआम करने की पूर्ण सहायता की।

14. **फिरोजशाह कोटला व रोडः-** इस मुसलमान अधिकारी ने भी अन्य मुगल शासकों के समान अपने कुरआन दीन (मजहब) का पालन किया। कुरआन शरीफ में दी गई आयतों जैसे कि- 2:39, 2:67-71, 3:28, 4:56, 5:33, 3:142, 4:24-29, 8-12-17, 2:191, 61:11, 4:95, 8:72, 90:5, 9:14, 9:111, 9:123, 47:7, 8:6, 4:24, 4:29, 56:17, 18:20-24 के अनुसार पहले तो जन्नत की हूरों, शराब, दूध व शहद वाली नदियों का प्रलोभन दिया। न मानने पर ऊपर की आयतों के अनुसार उनका तथा उनकी गौओं का कत्ल कर दिया।

विशेषः- मूल रूप से विचारने की बात यह है कि भारत की राजधानी दिल्ली में देश, धर्म, चरित्र, मानवता तथा संस्कृति के हत्यारों के नाम की सड़कें एवं कालोनियां होनी चाहिएं अथवा देश भक्तों, संतों तथा स्वतन्त्रता हित बलिदान करने वालों की? जिन कुरान की आयतों को पढ़कर भारत पर हमले किए कत्लेआम किए मन्दिर तोड़े, लाखों हिन्दुओं को गुलाम बना कर बेचे, नारियां लौंडी बनाईं। कुरानशरीफ

-शेष पृष्ठ सं. 30 पर

thearyasamaj.org

जब ब्राह्मणों के चरणों में संसार झुकता था

पूर्णिया श्रवक को अपने जीवन में अनेक बार सपत्नीक भूखा रहना पड़ा। वह अभावग्रस्त रह सकते थे पर अपनी मानसिक शान्ति किसी भी शर्त पर खोने को तैयार न थे। जब तक वह अपने घर आये। अतिथि को भोजन न करा देते स्वयं न करते थे।

एक दिन की बात। सुबह का समय। पूर्णिया स्वाध्याय में रत थे। पर बीच–बीच से स्वाध्याय का क्रम टूट जाता, मन उचट जाता, विचार की श्रृंखला टूट जाती, उसे नये सिरे से जोड़ते और फिर पढ़ना शुरू करते। प्रयत्न करने पर भी मन में स्थिरता नहीं हो पा रही थी। स्वाध्याय का समय पूर्ण होने पर अपने आसन से उठ बैठे।

पत्नी ने उनकी मुख मुद्रा पर बनती–बिगड़ती रेखाओं को देखा। समझ गई आज कोई बात अवश्य है। ऐसा उतार–चढ़ाव उसने कभी देखा न था। शायद किसी चिन्ता ने आ दबाया हो, पूछ बैठी 'आज क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं, शरीर तो ठीक जान पड़ता है। पर मन की अस्वस्थता ने एकाग्रता आने ही न दी। मानसिक घबराहट का कारण जानने पर भी समझ में नहीं आ रहा था बात क्या है? आज अपने घर में अनीति से अर्जित की गई कोई वस्तु तो नहीं आ गई है। क्योंकि भोजन के अनुसार ही मन के संस्कार बनते बिगड़ते रहते हैं। अब उसे ध्यान आ गया। दूसरे ही क्षण बोली क्षमा कीजिए आज भूल हो गई। मैं पड़ौसी से चूल्हा जलाने के लिए आग लेने गई। कंडा अपने साथ ले नहीं गई थी। उसी के कंडे पर आग ले आई थी और जल्दी–जल्दी में देना भूल गई।

रुपये दो रुपये की चीज ने पूर्णिया के विचारों में कैसा गतिरोध पैदा कर दिया उन्हें अपनी मानसिक अस्वस्थता का कारण मालूम हो गया। उन्होंने एक कंडा पड़ौसी के यहाँ वापिस भेज दिया। जो अनीति के उपार्जन से धर्म के नाम पर जन समाज को अधर्म और पाप का राह बताकर अपना और अपने परिवार का पालन करते हैं, उनकी स्थिति कैसी होगी, इसका अनुमान आप लगा सकते हैं। ❁❁❁

पृष्ठ सं. 29 का शेष–

अनुवादक मौलाना मु0 फारुक और डॉ0 मुहम्मद अहमद सलाम सैन्टर 65, पहली मैन रोड, जयनगर ईस्ट बैंगलौर–156004

15. **तैमूरलंग रोडः–** यह एक ऐसा क्रूर विदेशी हमलावर था जो लिखता है कि मैंने कुरआन से प्रेरणा पाकर भारत के काफिरों पर हमला करने का विचार किया। इस जालिम ने अनेक मन्दिर तोड़े। मुसलमान न बनने पर लाखों लोगों का कत्ल किया। उनके सिरों की ऊंची–ऊंची मीनारें बनाईं। आर्यखालसा हिन्दुओं के सिरों को काट–काटकर रस्सी में पिरोकर तोरण जैसे दिल्ली में अनेक द्वार बनाए। ऐसे सब लोगों के नाम पर भारत की राजधानी दिल्ली में सड़कें बनाकर क्या कांग्रेस सैकुलरवादी होने का कच्चा वादा निभा रही है अथवा कुर्सी के प्रलोभन में देश से गद्दारी कर रही है। ❁❁❁

thearyasamaj.org

रहस्य लम्बी जिन्दगी का !

लेखकः नरेन्द्र

एक साधु बूढ़े हो गए थे। उनके जीवन के आखिरी क्षण आ पहुंचे। आखिरी क्षण में उन्होंने अपने शिष्यों को पास बुलाया। जब सब उनके पास आ गये, तब उन्होंने अपना पोपला मुँह खोल दिया और शिष्यों से बोले–'देखो, मेरे मुँह में कितने दाँत बच गए हैं।'

शिष्यों ने उनके मुँह की ओर देखा, कुछ टटोलते हुए वे लगभग एक स्वर में बोल उठे महाराज, आपका तो एक भी दाँत शेष नहीं बचा। 'शायद कई वर्षों से आपका एक भी दाँत नहीं है।'

साधु बोले–'देखो मेरी जीभ तो बची हुई है।'

सबने उत्तर दिया–'हाँ आपकी जीभ तो अवश्य बची हुई है। पर यह सब कैसे हुआ?'

इस पर साधु ने का–'मेरे जन्म के समय जीभ थी और आज मैं यह चोला छोड़ रहा हूँ तो भी यह जीभ बची हुई है। ये दाँत पीछे पैदा हुए, ये जीभ से पहले कैसे विदा हो गए, इसका क्या कारण है, कभी सोचा?'

शिष्यों ने उत्तर दिया–'हमें मालूम नहीं। महाराज, आप ही बतलाइए।'

उस समय मृदु आवाज में साधु ने समझाया–'यही रहस्य बतलाने के लिए मैंने तुमको इस वेला में बुलाया है। इस जीभ में माधुर्य था, मृदुता थी और खुद भी कोमल थी इसलिए यह आज भी मेरे पास है, परन्तु मेरे दांतों में शुरू से ही कठोरता थी, इसलिए वे पीछे आकर भी खत्म हो गए, अपनी कठोरता के कारण ही ये दीर्घजीवी नहीं हो सके। दीर्घ होना चाहते हो तो कठोरता छोड़ो और विनम्रता सीखो।'

❋❋❋

पृष्ठ सं. 22 का शेष–

अधिष्ठान है। मनुष्य के लिए अपेक्षित एवं करणीय कर्तव्यों का विधान एवं ज्ञान वेद में उपलब्ध है। यह मनुष्यमात्र के लिए भवसागर से पार होने का साधन है। अतः सुख, शांति एवं आनंद के अभिलाषी को वेदानुकूल आचरण अर्थात् सत्य–असत्य, धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य का विचार करते हुए जीवन में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए क्योंकि सत्य, धर्म एवं पुण्य रुप कर्म ही सुख देने वाले तथा असत्य, अधर्म एवं पापरूप कर्म ही दुख देने वाले हैं। ❋❋❋

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका मंगाने हेतु

वार्षिक शुल्क 150/– एक सौ पचास रुपये वार्षिक शुल्क,

पन्द्रह वर्ष के लिए 1500/– एक हजार पाँच सौ रुपये

आज ही भेजिये।

thearyasamaj.org

चाणक्य

आर्यावर्त के एक विशाल भू-भाग पर विदेशियों (यूनानियों) का शासन ब्राह्मण चाणक्य के हृदय में शूल-सा चुभता रहता था। उसने आर्यावर्त के समस्त राजाओं को यूनानियों के विरुद्ध एक-संगठन सूत्र में पिरोने का प्रबल प्रयत्न किया, परन्तु विफल रहा। उस दिन उस ब्राह्मण का ब्रह्म-ओज उमड़ पड़ा। उसने अपनी चोटी खोल कर प्रतिज्ञा की, आर्यावर्त के समस्त राजाओं को समाप्त कर एक सुदृढ़ केन्द्रीय राजसत्ता स्थापन करके और यूनानियों को बाहर निकालकर ही पुनः इस चोटी में गाँठ लगाऊँगा।

विप्र चाणक्य के चोटी के बाल पवन-वेग से ध्वजवत् इधर-उधर फहरा रहे थे। उसके गौर नग्न शरीर पर शुभ्र यज्ञोपवीत असि की धारवत् चमक रहा था। नग्न काय, नग्न शिर, नग्न पाद, रिक्त हस्त, वह अलक्ष्य-सा जंगल को चीरता हुआ चला जा रहा था। सहसा उसे एक बालक बकरियाँ चराता हुआ दिखाई दिया।

अद्भुत ब्राह्मण की ओर देखकर विनोदपूर्ण मुद्रा में बालक के मुख से निकला, 'प्रणाम।' 'जय हो', अनायास ही ब्राह्मण के मुख से भी निकल गया। 'बच्चे, तेरा नाम?' 'चन्द्र!' 'तेरा पिता?' 'वह गडरिया।' 'तू गडरिया का पुत्र है?' 'हाँ।' 'झूँठ।' 'झूँठ नहीं, सत्य।'

बालक तनकर खड़ा हो गया। चाणक्य विस्मित होकर विचारने लगा, 'बालक की आकृति राजनीतिज्ञ महामंत्री मौर्य की आकृति से मिलती-जुलती है। परन्तु उस नीच मगधराज ने मौर्य और उसके सम्पूर्ण वंश का लगभग आठ वर्ष पूर्व वध करा दिया था। यहाँ कोई रहस्य है।'

चाणक्य विद्युद् वेग से गडरिये के पास पहुँचा। वह बालक परम राजनीतिज्ञ मौर्य का एकमात्र पुत्र है, यह जानकर चाणक्य हर्षातिरेक से उछल पड़ा। गड़रिये को समझा-बुझाकर चाणक्य बालक चन्द्रगुप्त मौर्य को अपने साथ ले गया और गंगा के तीर उस गहन वन में बालक का पालन-पोषण और शिक्षण किया। बीस वर्ष की आयु प्राप्त करने पर चन्द्र सोलह कलाओं से युक्त, अनुपम शू और पटु राजनीतिज्ञ बन गया। उसका रूप-लावण्य बड़ा विमोहक और चित्ताकर्षक था। मौर्य के सनिष्ठ (वफादार) सरदारों तथा राजपुरुषों को बुलाकर चाणक्य ने उन्हें चन्द्र का परिचय दिया। पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के समान कलान्वित चन्द्र के दर्शन करके सहसा उनके मुख से निकला, 'चन्द्रगुप्त मौर्य की जय'।

पाटलिपुत्र के राजभवन में दरबार लगा हुआ था। पच्चीस वर्ष का युवक सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य सिंहासन पर विराज रहा था। वामपार्श्व में सैल्यूकस की पुत्री सम्राज्ञी के रूप में सुशोभित थी। चाणक्य ने अपने हाथ से चन्द्र के शिर पर राजमुकुट रखकर अपनी चोटी में गाँठ लगाई और कहा, 'यूनानी सेनापति सेल्यूकस यूनान की सेनासहित यूनान चला गया है। आर्यावर्त आज विदेशियों के त्रास से सर्वथा मुक्त है। देश के समस्त राजाओं ने सम्राट् चन्द्र की मण्डलिकता स्वीकार कर ली है।' मेरा कार्य पूरा हो गया है। चन्द्र चिरंजीवी हो।'

सम्राट् खड़ा हुआ, महर्षि चाणक्य को राजगुरु घोषित करने के लिये, परन्तु दरबार-भवन में चाणक्य दिखाई न दिये।

कुछ मास पश्चात् गुप्तचरों ने सम्राट् चन्द्र को सूचना दी कि महर्षि चाणक्य गंगा के तीर, अमुक शिखर पर निवास करते हैं और प्रायः ध्यानमग्न रहते हैं।

सम्राट् चन्द्र एक प्रातः अपने मंत्रियों तथा सामंतों सहित महर्षि चाणक्य की कुटीर पर पहुँचे, तो देखा, वे समाधिस्थ हैं। पर्याप्त दिन चढ़े समाधि से निवृत्त हो महर्षि ने अपने नेत्र खोले, तो सम्राट् चन्द्र तथा उनके साथी महर्षि को

-शेष पृष्ठ सं. 34 पर

thearyasamaj.org

धर्म और विज्ञान को मिलकर चलना होगा

समग्र ज्ञान को दो भागों में बाँटा जा सकता है एक अन्तर्बोध पर आधारित अध्यात्म अथवा धर्म। दूसरा तर्क, परीक्षण, अनुभव तथा बताये गये तथ्यों के आधार पर भौतिक जगत सम्बन्धी निष्कर्ष। इनमें से प्रथम को विद्या दूसरे को शिक्षा कहा जा सकता है, प्रथम जानकारी को प्रज्ञा-दूसरी को बुद्धि कहते हैं। और भी स्पष्ट करें तो एक को ज्ञान दूसरे को विज्ञान। एक को धर्म दूसरे को कर्म कहने से ही वस्तुस्थिति समझी जा सकती है। भ्रमवश यह समझा जाता रहा कि इन दोनों का स्वरूप तथा कार्य क्षेत्र पृथक-पृथक हैं। पर सही बात यह है कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। यदि उन्हें असंबद्ध होने दिया जाय तो स्थिति बहुत ही विद्रूप हो जायेगी।

गड़बड़ तब पड़ती है जब दोनों के कार्यक्षेत्र की भिन्नता पहचानने में भूल की जाती है और एक से दूसरे का काम लेने का प्रयास किया जाता है। मनुष्य और पशु एक दूसरे के पूरक हैं। पारस्परिक सहयोग से दोनों ही लाभान्वित होते हैं, किन्तु यदि मनुष्य का कार्य पशु को सौंपा जाय और पशु के कार्य मनुष्य से लिए जायँ तो इसका परिणाम अवांछनीय ही होगा। धर्म का लक्ष्य है अन्तरात्मा में सन्नहित सत्प्रवृत्तियों का मनोविज्ञान सम्मत पद्धति से इतना समुन्नत करना कि वे व्यावहारिक जीवन में ओत-प्रोत हो सकें। विज्ञान का लक्ष्य है प्रकृतिगत शक्तियों तथा पदार्थों के स्वरूप तथा क्रिया-कलाप की इतनी जानकारी देना कि उनका समुचित लाभ मानवी सुख-सुविधाओं की अभिवृद्धि के लिए किया जा सके। दोनों का कार्य क्षेत्र प्रत्यक्षतः अलग है, जिसमें एक दूसरे को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। फिर भी वे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि जीवन आत्मिक एवं भौतिक दोनों प्रकार के तत्वों से मिलकर बना है। जड़ चेतन के समन्वय से ही जीवन का स्वरूप प्रत्यक्ष होता है। इतने पर भी यह अन्तर रखना ही पड़ेगा कि हृदय और मस्तिष्क की तरह दोनों का कार्य क्षेत्र विभक्त हो। एक का कार्य दूसरे पर थोपने की गलती न की जाय। भौतिक तथ्यों की जानकारी में पदार्थ विज्ञान को प्रामाणिक माना जाय और आत्मिक आन्तरिक चिन्तन एवं भावनात्मक प्रसंग में श्रद्धा की आत्मानुभूति को मान्यता दी जाय।

वैज्ञानिक और आत्मवादी दोनों ही अन्तर्ज्ञान से प्रकाश की किरणें प्राप्त करते रहे हैं। आविष्कारों को अकारण ही ऐसी सूझ उठी जिसके सहारे वे अपनी खोज का आधार बड़ा कर सके। पूर्व श्रृंखला न होने पर भी इस प्रकार का अनायास अन्तर्बोध यही सिद्ध करता है कि मानवी चेतना के पीछे कोई अलौकिक प्रवाह काम कर रहा था, जिसे अप्रकट को प्रकट करने की उतावली थी। विज्ञान की प्रधान धाराओं के मूल आविष्कर्ता इस तथ्य से सहमत हैं कि उन्हें अपने विषय की सूझ-बूझ अन्तःकरण में अकारण ही प्रस्फुटित हुई। यदि उस प्रकाश किरण के लिये कुछ साधारण से कारण भी थे तो भी उनमें कोई नवीनता नहीं थी। वह सब कुछ पहले से ही होता चला आया था। उमंग उठकर ठप्प नहीं हुई वरन् उसने एक के बाद एक कदम आगे बढ़ने का सहारा दिया और सूझ-बूझ की उस श्रृंखला में एक के बाद एक कड़ी जुड़ती चली गई। यदि ऐसा न होता तो शोध की उठी हुई इच्छा मार्ग न मिलने पर कुण्ठित ही रह जाती।

विज्ञान का क्षेत्र हो अथवा धर्म का, उसमें समुद्र मंथन करके कुछ रत्न प्राप्त कर सकने का श्रेय मनुष्य की रहस्यमय प्रवृत्तियों को ही है। वे स्वल्प मात्रा में कहीं भी पाई जा सकती है पर यदि किसी प्रकार उनको प्रखर किया जा सके तो उनकी परिणति असाधारण उपलब्धियों के रूप में ही होती है। इसी अवलम्बन के सहारे सामान्य ज्ञान को महद्ज्ञान और सामान्य व्यक्तित्व को महामानव बनने का श्रेय सौभाग्य प्राप्त होता है।

thearyasamaj.org

विज्ञान और धर्म की प्रगति में जो तथ्य सहायक रहे हैं उनमें से कुछ प्रमुख युग्म इस प्रकार हैं– (1) विवेक औ औचित्य (2) विश्वास एवं श्रद्धा (3) तर्क एवं आशा (4) जिज्ञासा और जानकारी (5) सभ्यता और शालीनता (6) प्रेम और बफादारी (7) त्याग औरसेवा (8) लगन और निष्ठा (9) धैर्य और साहस (10) पुरुषार्थ एवं मनोयोग। इनका अवलम्बन लेकर चलने वाले व्यक्तित्व इस संसार में कुछ बहुमूल्य रत्न प्राप्त करके ही रहते हैं। धर्म हो अथवा विज्ञान हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियों का श्रेय अंततः कुछ विशिष्ट सत्प्रवृत्तियों पर ही निर्भर सिद्ध होता है। कहना न होगा कि वह अन्तःस्फुरणा जो प्रसुप्त दिव्य प्रवृत्तियों को जागृत कर सके किसी अज्ञात संकेत से ही उद्‌भूत होती है।

दार्शनिक रैक्वे कहते हैं– मनुष्य ने विज्ञान द्वारा प्रकृति के अन्तराल को समझा है और धर्म के द्वारा अपनी महानता का आभास पाया है।

श्री जेविन्स का कथन है कि जादू-टोने चमत्कार तथा रहस्यवाद के आधार पर जो धर्म अथवा धर्माधिकारी खड़े हैं उनकी जड़ें खोखली हैं। सिद्धान्तों और प्रेरणाओं की दृष्टि से जहाँ खोखलापन होगा वहीं लोगों को आकर्षित करने के लिए ऐसे हथकण्डे काम में लाये जायेंगे। धर्म तो अपने आपमें इतना उपयोगी है कि उसका यथार्थ स्वरूप समझने पर वह स्वयं ही एक ऐसा जादू चमत्कार प्रतीत होता है कि जिसके आधार पर व्यक्तित्व में क्रांतिकारी परिष्कार एवं उसका सत्परिणाम प्रत्यक्ष देखा जा सके।

विज्ञानी रुनेगलोविश– इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पृथ्वी दो ध्रुवों अथवा शीत ग्रीष्म ऋतु प्रवाह की तरह एक दूसरे से भिन्न दीखते हुए भी धर्म और विज्ञान वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों में से एक के आधार पर जो भी निष्कर्ष निकाला जायगा वह वस्तुतः अपूर्ण ही रहेगा। पदार्थ में चेतना का अस्तित्व और चेतना को सक्रिय रहने के लिए भौतिक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। दोनों का समन्वय ही विश्व को वर्तमान स्वरूप प्रदान कर सका है। यदि उन्हें सर्वथा पृथक् कर दिया गया तो अधूरे और भटकाव भरे निष्कर्ष ही हाथ लगेंगे। ❁❁❁

पृष्ठ सं. 32 का शेष–

प्रणाम कर उनके अभिमुख एक पंक्ति में बैठ गये।

'ऋषे ! में आपके चरणों में यह निवेदन करने आया हूँ कि आप अपने चन्द्र के साम्राज्य के राजगुरु पद को सुशोभित करें और राजधानी के समीप उस सुरम्य आश्रम में विराजें। यह साम्राज्य आप ही की सुनीति से सम्पादित हुआ है और आप ही की सुसम्पति से मैं सुचारुता के साथ इसका संचालन कर सकूंगा, सम्राट् चन्द्र ने निवेदन किया।

'तुम चिरंजीवी होओ, चन्द्र ! और चिरस्थायी हो तुम्हारा साम्राज्य! केवल अपनी पावन मातृमही को विदेशियों के शासन से मुक्त करने के लिये ही यह ब्राह्मण राजप्रपंच में पड़ा था, चन्द्र ! और यदि मेरे जीते-जी मातृभूमि प पुनः कभी संकट आया तो मैं फिर संघर्ष में कूद पडूंगा। अन्यथा मैं पूर्व भी यहीं रहा करता था और भविष्य में भी यहीं रहूँगा। ब्राह्मण का स्वाभाविक निवास स्थान तो सरित् के तीर गिरिशिखर ही हैं। कोई राज-समस्या हो तो बोलो, मैं उसका समाधान कर दूं। अन्यथा जाओ, वत्स, अपना कार्य करो।'

'क्या आप अपनी कोई सेवा बतायेंगे, गुरो?'

'राष्ट्र का रक्षण और प्रजा की सेवा करो, यही मेरी सेवा है, सम्राट् ! इस शरीर को किसी की सेवाओं की कोई आवश्यकता नहीं है',इतना कहकर चाणक्य द्रुत गति से यज्ञार्थ समिधायें चयन करने के लिये चले गये।

अपनी राजधानी को जाते हुए सम्राट् साथियों से बोले, 'आज मेरी समझ में आया है कि ब्राह्मण किसे कहते हैं और ब्राह्मण को सर्वपूज्य क्यों माना जाता है।' ❁❁❁

thearyasamaj.org

नारियाँ, 26. रामायण कालीन आदर्श नारियाँ, 27. महाभारत कालीन आदर्श नारियाँ, 28. स्वाधीनता की वीरांगनायें, 29. वीर नारियाँ, 30. आदर्श मातायें, 31. सती वीरांगनायें, 32. पतिव्रता नारियाँ, 33. देश विदेश की वीर बालिकायें, 34. स्वराज्य की नींव, 35. बालक जो महान बने, 36. मील के पत्थर, 37. शिक्षाप्रद कहानियाँ, 38. चित्रमय दयानन्द, 39. हितोपदेश की कहानियाँ, 40. कहानियाँ जो अमर हैं, 41. अमर भारत, 42. वैदिक ऋषिकायें।

प्रिय 'सुमन' का विवाह ईश कृपा से आचूड़ान्त वैदिक सिद्धान्तों के दीवाने स्व0 पं0 रामकुमार जी आर्य (घिरोर-मैनुपरी) की सुपुत्री उर्मिलार्या 'भारती' से 4 मई 1969 में हुआ था। उर्मिल के अग्रज प्रिय वेदप्रकाश 'प्रकाश' ने ही उनकी भी साहित्यिक रुचि होने से, इनकी मधुर मुस्कानों के कारण इन्हें 'सुमन' उपनाम दिया था। प्रिय 'सुमन' 25 वर्ष तक एक तपस्वी की भाँति साहित्य-साधना करता रहा, अपने सभी सहकर्मियों और सम्पर्क में आने वालों को मधुर मुस्कानें बाँटता रहा। कार्यभार जनित पीड़ा को अन्तर में छुपाये सभी को जीवनसोम लुटाता रहा। इधर वानप्रस्थ दीक्षा के पश्चात् वै0 मि0 आर्ष गुरुकुल के प्रबन्धन, व भवन निर्माण, आचार्य पद के निर्वहन में हम इतना डूब से गये, जिससे पत्रिका के सम्पादन, प्रकाशन, प्रूफ शोधन, कार्यालय व्यवस्था का सभी दायित्वभार उसे संभालना पड़ा और सम्भवतया इसी स्थिति में उच्च रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) हुआ, जिससे किडनीरोग बना, जिसे पूर्ण वेग में आने के पूर्व डाक्टर भी जान नहीं सके, और अन्ततः वह प्यारा-प्यारा 'सुमन' असमय में मुरझा गया। प्रभो, आपकी इच्छा पूर्ण हो !! प्यारा 'सुमन' चला गया। कई बार लगता है जैसे अति सामाजिकता के व्यामोह में हम उसके प्रति न्याय नहीं कर सके हों। अपनी धर्म प्राणा पत्नी, दो पुत्रियों और एक मात्र पुत्र चि0 प्रवीण को वह छोड़ गया है। प्यारे प्रभुदेव हमें शक्ति-भक्ति देना हम वानप्रस्थ जीवन से गृहाश्रम की ओर पुनः मुड़कर भी इनके प्रति स्वकर्तव्य निभा सकें। प्रभो, उसकी आत्मा को शान्ति देना, यही कामना है, प्रभो! यही विनय है-

तेरे फूलों से भी प्यार, तेरे काँटों से भी प्यार।
मुझको रखना चाहे जैसे रख मेरे दातार।।

बाल साहित्य एवं महिला साहित्य का सम्पादन, प्रकाशन 'सुमन' का प्रिय विषय था। इस हेतु अपार प्रयासों से उन्होंने 'आदर्श प्रकाशन' को जन्म दिया। वैदिक मान्यताओं पर आधारित 'नैतिक शिक्षा माला' प्रकाशित करने की उनकी बड़ी चाह थी, जो उनके जीवनकाल में पूरी न हो सकी। उनकी स्मृति में इसी अधूरी चाह को पूरा करने का प्रयास है।

आशा है कि प्रिय 'सुमन' के प्रेमी पाठक व प्रशंसक इस 'नैतिक शिक्षा माला' को सोत्साह अपनाकर स्वकर्तव्य-पालन करेंगे। ईश कृपा से विश्वास है कि इसके द्वारा विद्यालयों में एक बड़े अभाव की पूर्ति होगी।

(आदरणीय वेदप्रकाश जी के जीवन वृत्तान्त की यह सामान्य झांकी उन्हीं के पूज्य पिताश्री आचार्य प्रेमभिक्षु जी महाराज द्वारा उसी समय लिखी गयी थी हम उसे ज्यों का त्यों प्रकाशित कर रहे हैं।

-प्रेमभिक्षु (आचार्य)

thearyasamaj.org

'तपोभूमि' अगस्त 2014 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण	150.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शंकर सर्वस्व	120.00	महिला गीतांजलि	10.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	क्या भूत होते हैं	10.00
नारी सर्वस्व	60.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
संस्कार चन्द्रिका प्रथम भाग	40.00	सच्चे गुच्छे	8.00
विदुर नीति	40.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	नवग्रह समीक्षा	6.00
चाणक्य नीति	40.00	आर्यसमाज और श्रीराम	6.00
वेद प्रभा	30.00	आचार्य श्रीराम शर्मा : एक सरल चिन्तन	5.00
शान्ति कथा	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
नित्य कर्म विधि	30.00	गायत्री गौरव	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश	25.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
यज्ञमय जीवन (प्रेस में)		सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
दो मित्रों की बातें	25.00	जीजा साले की बातें	5.00
मील का पत्थर (प्रेस में)		भागवत के नमकीन चुटकुले	5.00
सुमंगली (प्रेस में)		आदर्श पत्नी	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2014 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग (आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास, मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मो. 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, ...क, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित